प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

दिसम्बर 2019

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

संपादकीय

किसान भाइयो, नमस्कार। आप सबको नववर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ। इस बार ठंड कड़ाके की पड़ी। जहाँ इसने उत्तर भारत के तलहटी इलाकों में पहली बार बर्फबारी देखने को मिली, वहीं दिल्ली एवं आसपास से इलाकों में भी इसने पिछले एक शताब्दी के रिकॉर्ड तोड़ दिए। यह मौसम उत्तर भारत के गंगा जमुनी मैदानों में गेहूँ के लिए अनुकूल है, क्योंकि गेहूँ में फुटाव के समय ठंड जितनी कड़ाके की होती है, फसल में उतना ही अच्छा फुटाव होता है। इसके साथ ही इस मौसम में वर्षा भी अच्छी हुई है, जिसका सकारात्मक प्रभाव, मुख्यतः वर्षा आधारित क्षेत्रों में सभी फसलों पर पड़ेगा, अतः अपेक्षा की जा सकती है कि रबी फसलों की पैदावार इस वर्ष अच्छी मिलने की काफी संभावना है।

कृषि के लिए यह साल खट्टे और मीठे, दोनों प्रकार के अनुभव ले आया। प्याज के दामों ने न केवल सैकड़ा पार किया, बल्कि टमाटर के दाम भी आसमान को छूने लगे। ऐसा पहली बार हुआ कि प्याज के दामों में तेजी महीनों तक बनी रही। यह दौर शहरी उपभोक्ताओं के लिए कष्टदायक रहा, तथपि किसानों के लिए भी लाभदायक नहीं था। नासिक के प्याज उत्पादकों को मौसम की मार झेलनी पड़ी, और रबी मौसम की प्याज के मूल्य किसानों को काफी कम मिला। बढ़े मूल्य का लाभ व्यापारियों ने ही उठाया। यदि फसलों और कृषि जिंसों के बढ़ते दाम से किसान का भला होता तो भी बात कुछ समझ में आती है, लेकिन हमेशा की तरह इस बार भी बिचौलियों को फायदा मिला। तिस पर कोढ़ में खाज यह, कि सरकार ने ऐसे समय में तुर्की से प्याज आयात करने का फैसला कर लिया, जिसके संपन्न होने तक नई स्वदेशी प्याज बाजार में आ गई, और राज्यों के लिए सुनिश्चित की गई मात्रा उन्होंने नहीं उठाई। अब किसान को नई फसल भी जो बढ़त मिलने की रही सही संभावना भी समाप्त हो गई है।

कृषि राज्य का विषय है, लेकिन अब समय आ गया है कि राष्ट्रीय स्तर पर सम्मिलित योजना बने। इतना ही नहीं, कुछ मामलों में अंतरराष्ट्रीय सहयोग कर नीतियाँ बनाई जानी चाहिए। जैसे इस वर्ष राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में टिड्डी दल का प्रकोप देखने को मिला। ये टिड्डी दल दूर अफगानिस्तान के रास्ते पाकिस्तान से होकर आए थे। यह एक मुल्क की समस्या नहीं है। इसी प्रकार जल संकट, प्रदूषण भी वैश्विक समस्याएँ हैं।

गत कुछ वर्षों से कृषि उद्यमियों की एक नई पौध आ रही है। ये युवा कृषि से इतर विषयों, जैसे इंजीनियरिंग, प्रबंधन, सूचना प्रौद्योगिकी से पढ़े–लिखे हैं और कृषि व संबंधित क्षेत्रों में व्यवसाय की नई संभावनाएँ तलाश रहे हैं। सेवा और डिलीवरी क्षेत्रों में मानव संसाधन एवं पूँजी का निवेश कर रहे हैं। हालाँकि ये ग्रामीण परिवेश या कृषक परिवार से नहीं हैं, लेकिन इनमें जिज्ञासा, उत्साह और प्रयोगधर्मिता कूट–कूट कर भरी है। यदि इन्हें उचित प्रोत्साहन और व्यवसाय के लिए अनुकूल वातावरण मिले, तो देश की कृषि की दशा बदल सकती है। मौजूदा कृषि एवं विकास विभाग का समूचा तंत्र के कार्य करने का तरीका पुराना, निरुत्साही हो चुका है। हमें इस नई पीढ़ी को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ संभालना, शिक्षित करना और सहयोग देना होगा।

वर्तमान समय और इसकी कृषि आवश्यकताओं को मद्देनजर रखते हुए प्रसार दूत के इस अंक में समसामयिक विषयों पर आलेख शामिल किए गए हैं, जिनमें मुख्य सृष्टि योजना – रूफटॉप सोलर पावर प्लांट सब्सिडी, प्याज की उन्नत उत्पादन तकनीक, जैविक खेती एवं उसके प्रभाव, कीटनाशकों का प्रयोग, भण्डारण और निस्तारण– जानकारी व सावधानियाँ, हरी खाद – भूमि की उर्वरता को बढ़ाने का सर्वोत्तम साधन, फलों की तुड़ाई के बाद आम के बागों की देखभाल, स्टेविया (स्टेविया रेबुडियाना) के औषधीय महत्व, सब्जियों के प्रमुख रोग एवं प्रबन्धन, सूक्ष्मजीवों के माध्यम से धान की पुआल से बायोएथेनॉल और कम्पोस्ट का उत्पादन, गेंदे की फसल का व्यवसायिक उत्पादन, आधुनिक कृषि में बीजोपचारः समय की जरूरत, फलों एवं सब्जियों का कटाई उपरांत प्रबंधन तथा मूल्यसंवर्धन, संरक्षित खेती हैं। उम्मीद है इनके आपको लाभ होगा। यह अंक आपको कैसा लगा, पत्र लिखकर अवगत कराएँ।

(संपादक)

दिसम्बर 2019

प्रसार दूत

वर्ष 24 | 2019 | अंक-4

संरक्षक
डॉ. ए.के. सिंह
निदेशक

डॉ. जे.पी. शर्मा
संयुक्त निदेशक (प्रसार)

प्रधान सम्पादक
डॉ. जे.पी.एस. डबास

सम्पादक
डॉ. एन.वी कुंभारे

सम्पादक मंडल
डॉ. वाई. वी. सिंह
डॉ. एम. के. वर्मा
श्री के. एस. यादव
डॉ. हरीश कुमार
डॉ. वाई. पी. सिंह
श्री आनन्द विजय दुबे

तकनीकी सहयोग
श्री विजय सिंह जाटव
श्री लक्खीराम मीणा
श्री राजेश सिंह

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012
फोनः 011–25841039
पूसा एग्रीकॉमः 1800118989 (टोल फ्री)
ई–मेंलः incharge_atic@iari.res.in
वेबसाइटः www.iari.res.in

विषय सूची | पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1	सृष्टि योजना– रूफटॉप सोलर पावर प्लांट सब्सिडी	1
2	प्याज की उन्नत उत्पादन तकनीक	3
3	जैविक खेती एवं उसके प्रभाव	9
4	कीटनाशकों का प्रयोग, भण्डारण और निस्तारण– जानकारी व सावधानियाँ	12
5	हरी खाद– भूमि की उर्वरता को बढ़ाने का सर्वोत्तम साधन	15
6	फलों की तुड़ाई के बाद आम के बागों की देखभाल	19
7	स्टेविया के औषधीय महत्व	22
8	सब्जियों के प्रमुख रोग एवं प्रबन्धन	24
9	सूक्ष्मजीवों के माध्यम से धान की पुआल से बायोएथेनॉल और कम्पोस्ट का उत्पादन	32
10	गेंदे की फसल का व्यवसायिक उत्पादन	35
11	आधुनिक कृषि में बीजोपचारः समय की जरूरत	41
12	फलों एवं सब्जियों का कटाई उपरांत प्रबंधन तथा मूल्यसंवर्धन	43
13	संरक्षित खेती	51

वार्षिक शुल्क ₹ 80/– मनीआर्डर द्वारा | **एक प्रति मूल्य ₹ 20/–**

सृष्टि योजना – रूफटॉप सोलर पावर प्लांट सब्सिडी

वेंकटेश्वर जल्लारफ, सीमा नबेरिया एवं कामिनी बिष्ट

प्रसार शिक्षा विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्व विद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश 482004

केंद्र सरकार एवं नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय के समन्वय से एक नई योजना शुरू की गयी जिसका नाम SRISTI (भारत के सोलर ट्रैसफिगुरेशन के लिए सस्टेनेबल रूफटॉप इंप्लीमेंटेशन) है, जिसके तहत देश के भीतर सौर ऊर्जा संयंत्र को छत पर स्थापित करने के लिए लाभार्थियों को केंद्र सरकार द्वारा वित्तीय प्रोत्साहन प्रदान किया जाता है। इस योजना के पीछे सरकार का मुख्य उद्देश्य स्थानीय आवासीय लोगों के लिए ऊर्जा के सतत रूप के उपयोग को बढ़ावा देना है। हम सभी अपने देश में ऊर्जा क्षेत्र की स्थिति के बारे में जानते हैं। भारत शीर्ष सौर ऊर्जा उत्पादक देश है। लेकिन यह बात है कि हमारे देश में कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ अभी तक बिजली की आवश्यकता शुरू नहीं हुई है। यह योजना सरकार द्वारा बिजली की आवश्यकता को पूरा करने और सौर ऊर्जा के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए एक पहल है। इस योजना का कार्यान्वयन बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। आमतौर पर 1 किलोवाट रूफटॉप सोलर (RTS – Rooftop Solar) संयंत्र के लिए लगभग 10 वर्ग मीटर क्षेत्र की आवश्यकता होती है।

सृष्टि योजना एक प्रकार की सब्सिडी योजना है, जिसे केंद्र सरकार और नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय के माध्यम से पूरे देश मे विनियमित और शुरू किया गया है। इस परियोजना के कार्यान्वयन के लिये केंद्र सरकार ने पहले से ही 23,450 करोड़ रुपये का निवेश करने की घोषणा की है।

सृष्टि योजना के महत्वपूर्ण विशेषताएं : –

- सृष्टि योजना के तहत बिजली के स्थायी स्रोत पैदा करने के लिए छत के ऊपर सौर पैनलों की स्थापना के लिए केंद्रीय सरकार द्वारा प्रोत्साहन प्रदान किया जाएगा।
- सृष्टि योजना के तहत, सरकार द्वारा उन लोगों को वित्तीय प्रोत्साहन दिया जाएगा, जो सोलर रूफटॉप पावर प्लांट स्थापित कर रहे हैं।
- सृष्टि योजना देश के भीतर एम० एन०आर०ई० (MNRE – Ministry of New and Renewable Energy) के तहत पहले से शुरू की गयी उन्नत संकरण के रूप में माना जाता है।
- सृष्टि योजना का विनियमन केंद्र सरकार एवं नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय के समन्वयन से चल रहा है तथा सौर ऊर्जा को बढ़ावा दे रहा है।
- सृष्टि योजना के तहत निवासियों को सस्ते बिजली की आपूर्ति से लाभान्वित करने के लिये छत के ऊपर सौर पैनलों की स्थापना के लिए केंद्र सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान किया जाएगा।
- स्थानीय सरकार के नियमों के अनुसार इन–लाइन क्षमता स्थापित करने साथ – साथ अपनी व्यक्तिगत जरूरतों के अनुसार बिजली पैदा करने के लिए निवासियों को राज्य विद्युत नियामक आयोग (SERC – State Electricity Regulatory Commission) का पालन करना होगा।
- सब्सिडी समर्थन संयंत्र की क्षमता 5 किलोवाट तक सीमित होगा, लेकिन आवासीय उपयोगकर्ता अपनी आवश्यकता और संबंधित राज्य विद्युत नियामक आयोग विनियमन के अनुसार संयंत्र की क्षमता स्थापित कर सकते हैं।
- सृष्टि योजना में बिजली संयंत्र की तुलना में 5 KWP क्षमता पैदा करने पर केंद्र सरकार द्वारा प्रोत्साहन प्रदान किया जाएगा।
- इस सृष्टि योजना के द्वारा केंद्र सरकार का लक्ष्य वित्तीय वर्ष मे निर्धारित बजट के तहत 40000 मेगा वाट

बिजली उत्पादन करना है।

- इस सौर सब्सिडी योजना को लागू करने के लिए सरकार डिस्कॉम (Distribution Companies) को स्कीकृत करेंगा।
- केंद्र सरकार आवासीय उपयोगकर्ताओं के लिए रूफटॉप सौर ऊर्जा संयंत्रों को लागू करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करेंगा।

सृष्टि योजना के अंतर्गत प्रोत्साहन राशिः –

केंद्र सरकार द्वारा इस नई योजना के अंतर्गत निम्नलिखित प्रोत्साहन दिए जायेंगे–

- ✓ इस सृष्टि योजना के तहत, आवासीय क्षेत्र से जुड़े उपयोगकर्ताओं को 60000 किलोवाट की दर से 18000 किलोवाट उत्पन्न करने के लिए एक प्रोत्साहन की पेष की जाएगी।
- ✓ सृष्टि योजना सरकार के द्वारा वाणिज्यिक, सरकार, औद्योगिक और सामाजिक सहित विभिन्न क्षेत्रों में डिस्कॉम सुविधा प्रदान की जाएगी। सरकार 5500 रुपये प्रति किलोवाट की दर से 55000 रुपये प्रति किलोवाट की निर्धारित दर की पेशकश करेंगी।
- ✓ सरकार के द्वारा 5000 मेगावाट क्षमता संयंत्र की स्थापना के लिए कुल 9000 करोड़ रुपये की सब्सिडी की पेशकश की जायेगा।
- ✓ सरकार द्वारा 35000 मेगावाट की छतों पर सौर पैनलों की स्थापना के लिए डिस्कॉम (Distribution Companies) के लिए 14450 करोड़ रुपये की सब्सिडी प्रदान की जाएगी।
- ✓ संपूर्ण परियोजना के कुल परिव्यय के रूप में 23450 करोड़ रुपये का निवेश करके 40 गीगावॉट की बिजली उत्पादन किया जाएगा।

निष्कर्ष

केंद्र सरकार द्वारा सोलर रूफटॉप इंस्टॉलेशन के लिए सब्सिडी देकर आवासीय लोगों में ऊर्जा का स्थायी रूप में उपयोग करने के आदर्श को बढ़ावा देना। देश में रूफटॉप सौर ऊर्जा की तैनाती में तेजी लाने के लिए नवीन और नवीकरण ीय ऊर्जा मंत्रालय (MNRE) ने एक अवधारणा नोट तैयार किया है 'सस्टेनेबल रूफटॉप इंप्लीमेंटेशन फॉर सोलर ट्रांसफिगुरेशन ऑफ इंडिया' (SRISTI)। सरकार ने 2022 तक देश में 100 गीगावॉट सौर ऊर्जा स्थापित क्षमता तक पहुंचने का लक्ष्य रखा है, जिसमें से 40 गीगावॉट सौर छत के माध्यम से लक्षित है।

अधिक जानकारी के लिए इस website पर खोजें

https://mnre&gov&in/

https://solarrooftop-gov-in

प्याज की उन्नत उत्पादन तकनीक

निशिथ गुप्ता, नीरजा पटेल एवं ए.के. दीक्षित

रा.वि.सिं.कृ.वि.वि. –कृषि विज्ञान केन्द्र, देवास (म.प्र.)

कंदवर्गीय सब्जियों में व्यापारिक दृष्टिकोण से प्याज का बहुत अधिक महत्व है। प्याज एक महत्वपूर्ण कंदीय सब्जी एवं मसालाफसल है जिसका उपयोग मनुष्य के भोजन में किसी ना किसी रूप में अवश्य होता है। यह भोजन को स्वादिष्ट बनाने के साथ साथ उसकी पौष्टिकता को भी बढ़ाता है। इसके कंद में आयरन, कैल्शियम तथा विटामीन 'सी' मुख्य रुप से पाया जाता है। इसका उपयोग अनेक बीमारीयों जैसे पित्तरोग, षरीर दर्द, खूनी बावासीर, रतौंधी, मलेरिया, कान दर्द आदि के उपचार में औषधि के रूप में भी किया जाता हैं। साथ ही यह शरीर में कोलेस्ट्राल को नियंत्रित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। प्याज में तीखापन इसमें पाऐ जाने वाले वाष्पशील तेल "एलाइल प्रोपाइल डाईसल्फाइड" के कारण होता है जबकि लाल एवं पीला रंग क्रमषः 'ऐंथोसायनीन' एवं 'क्वरसेटीन' नामक पिगमेन्ट के कारण होता है।

जलवायु :

- प्याज के पौधों तथा कंद की अच्छी बढ़ावार के लिये समाशितोष्ण जलवायु अर्थात जहाँ तापमान न अधिक और न कम रहता है, उपयुक्त होता है। फसल की अच्छी बढ़वार के लिये तापमान ठंडा होना चाहिये तथा मृदा में पर्याप्त नमी होनी चाहिये। कंदों की खुदाई के समय तापमान अधिक तथा नमी का कम होना आवश्यक है।कंद विकास के लिये अधिक तापमान व बड़ें दिनों की आवश्यकता होती है।
- फसल वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं में निम्नलिखित तापमान की आवश्यकता होती है।

बीजों के अंकुरण के लिय	: 20–25 डिग्री सेण्टीग्रेड
बढ़वार के लिये	: 15–18 डिग्री सेण्टीग्रेड
कंद निर्माण के लिय	: 20–25 डिग्री सेण्टीग्रेड
कंद पकने के लिये	: 25–30 डिग्री सेण्टीग्रेड

भूमि :

प्याज की खेती के लिये दोमट या बलूई दोमट मिट्टी, जिसमें जीवांश खाद प्रचुर मात्रा मे हो व जल निकास की उत्तम व्यवस्था हो, सर्वोत्तम रहती है। साथ ही मिट्टी की जलधारण क्षमता भी अच्छी होनी चाहिये।

खेत की तैयारी :

प्याज के खेत में पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद 2–3 बार देशी हल अथवा हैरो द्वारा जुताई करनी चाहिये जिससे की मिट्टी के नीचे की कठोर परत टूट जाए तथा मिट्टी भूरभूरी बन जाए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाऐं। पौध रोपाई से पूर्व खेत में अच्छी तरह से क्यारियाँ एवं सिंचाई के लिये नालियाँ बना लें।

उन्नत किस्में :

प्याज की उन्नत किस्में विभिन्न अनुसंधान केन्द्रों एवं कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा निकाली गई हैं जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है।

1. **एन.एच.आर.डी.एफ. रेडः** यह किस्म राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान, नासिक द्वारा विकसीत की गई है। यह किस्म अपने आकर्षक गहरे लाल रंग के कारण बहुत पसंद की जाती है। यह किस्म रोपाई के 110–120 दिन बाद पककर तैयार हो जाती है। इस किस्म के कंद की भंडारण क्षमता अच्छी होती है तथा प्रति हेक्टेयर औसत उपज 220–250 क्विटल तक होती है।
2. **एन.एच.आर.डी.एफ. रेड–2:** यह किस्म राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान, नासिक द्वारा विकसीत की गई है। इस किस्म के कंद गोल व

लाल रंग के होते हैं। रोपाई के 110–120 दिन बाद पककर तैयार हो जाते हैं तथा औसत उपज 300–400 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

3. **एन.एच.आर.डी.एफ. रेड–3 (एल–652):** यह किस्म भी राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान, नासिक द्वारा विकसीत की गई है। इस किस्म के कंद गोल व कांस्य लाल रंग के होते हैं। रोपाई के 100–120 दिन बाद कंद पककर तैयार हो जाते है तथा औसत उपज 350–400 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

4. **भीमा लाइट रेडः** रबी के उपयुक्त इस किस्म के कंद हल्के लाल गोलाकार एवं 70 ग्राम वजन वाले होते हैं। कंद रोपण के 115 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं। औसत उपज 385 क्विटल प्रति हेक्टेयर हैं। यह किस्म कर्नाटक एवं तमिलनाडु के लिये अनुशंसित है।

5. **भीमा किरणः** यह किस्म प्याज एवं लहसुन अनुसंधान निदेशालय, राजगुरुनगर (पूना) द्वारा विकसीत की गई है। कंद अंडाकार से गोलाकार, हल्के लाल रंग व उत्तम भंडारण क्षमता (5–6 महिने) वाले होते हैं। यह किस्म रोपाई के 125 से 135 दिन बाद तैयार हो जाती है। औसत उपज लगभग 200 से 220क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। फफूंद जनित रोगों के लिये कुछ हद तक सहनशील है।

6. **भीमा शक्तिः** प्याज एवं लहसुन अनुसंधान निदेशालय, राजगुरुनगर (पूना) द्वारा विकसीत यह किस्म रोपाई के 125 से 135 दिन बाद पककर तैयार हो जाते हैं। औसत उत्पादन 280 से 300क्विंटल/हेक्टेयर तक होती है। भंडारण क्षमता 5–6 महिने तक होती है। थ्रिप्स व फफूंद जनित रोगों के लिये कुछ हद तक सहनशील है।

7. **भीमा राजः** यह किस्म भी प्याज एवं लहसुन अनुसंधान निदेशालय, राजगुरुनगर द्वारा विकसीत की गई है। यह किस्म 115 से 120 दिनों बाद तैयार हो जाती है। औसत उत्पादन 250 से 300क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है। इस किस्म को अधिक समय तक भंडारित नहीं किया जा सकता है। थ्रिप्स व फफूंद जनित रोगों के लिये कुछ हद तक सहनशील है।

8. **भीमा रेडः** इस किस्म के कंद गोल व लाल रंग के होते हैं और 110–120 दिन में तैयार हो जाते हैं। इस किस्म की औसत उपज 250 से 300 क्विटल/हेक्टेयर तक होती है। थ्रिप्स के लिये कुछ हद तक सहनशील है।

9. **एग्रीफाउण्ड लाइट रेडः** इसके कंद गोल एवं हल्के लाल रंग के होते हैं तथा भंडारण क्षमता उत्तम होती है। इस किस्म से प्रति हेक्टेयर 300 क्विटल तक उपज प्राप्त की जा सकती है। कंद 135–140 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं।

10. **फूले स्वर्णः** इस किस्म के कंद मध्यम व बड़े आकार वाले पीले रंग के होते हैं। कंदों में तीखापन कम होता है तथा इन्हें 4–6 महीने तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इस किस्म की परिपक्वता अवधि 125–130 दिन की होती है तथा औसत उपज 200–250 क्विटल/हेक्टेयर तक होती है। इस किस्म के निर्यात की अच्छी संभावनाऐं है।

प्रसंस्करण योग्य प्रजातियां

1. **एग्रीफाउण्ड सफेद** :इस किस्म के कंद हल्का तीखापन लिये हुए मध्यम आकार के व सफेद रंग के होते हैं। कंद रोपण के लगभग 90 दिन बाद पककर तैयार हो जाते हैं तथा इन किस्मों से 100 क्विंटल/हेक्टेयर तक औसत उपज प्राप्त हो जाती है।

2. **भीमा श्वेता** :इस किस्म के कंद सफेद रंग के, गोलाकार होते हैं। कंद रोपण के 110 से 115 दिन में तैयार हो जाती है। औसत उपज 280 से 300क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त हो जाती है। इस किस्म को 3 माह तक भंडारित किया जा सकता है। यह किस्म थ्रिप्स के प्रति सहनशील है।

3. **फूले सफेद** :यह किस्म महात्मा फूले कृषि विद्यापीठ, राहुरी (महाराष्ट्र) द्वारा वर्ष 1994 में विकसीत कि गई है। इसके कंद गोलाकार होते हैं तथा प्रति हेक्टेयर 250–300क्विंटल तक उत्पादन देते हैं। इस किस्मों की भंडारण क्षमता 2 से 3 माह तक होती है।

4. **अकोला सफेद** :यह किस्म डॉ. पंजाब राव देशमुख कृषि विद्यापीठ, अकोला (महाराष्ट्र) द्वारा वर्ष 2006 में

विकसीत कि गई है। इस किस्म के कंद सफेद रंग के होते हैं। प्रत्येक कंद का आकार 4.9 से 6.5 से.मी. तथा वजन 70–80 ग्राम तक होता है। कंद रोपण के लगभग 130–135 दिन बाद पककर तैयार हो जाते हैं। औसत उपज 272–300 क्विंटल/हेक्टेयर है।

5. **उदयपुर–102** : इस किस्म के कंद सफेद रंग के तथा आकार में गोलाकार चपटे होते हैं। प्रत्येक कंद का आकार 4.5 से 6.5 से.मी. तक होता है। कंद रोपण के लगभग 120 दिन बाद पककर तैयार हो जाते हैं। औसत उपज 300–350क्विंटल/हेक्टेयर है।

बीज दर :

बीज की मात्रा, बुवाई की विधि पर निर्भर करती है।

बुवाई की विधि		बीज की मात्रा
छिटकंवा विधि या सीधे खेत में बुवाई	:	20–25 कि.ग्रा./हेक्टेयर
रोपण विधि	:	8–10 कि.ग्रा./हेक्टेयर
कंदों की बुवाई	:	10–12 क्विटल/हेक्टेयर

बीज बोने, रोपण एवं खुदाई का समयः

बीज बोने का समय	पौध रोपण का समय	खुदाई का समय
अक्टूबर – नवंबर	दिसंबर – जनवरी	मई – जून

पोषक तत्व प्रबंधन :

प्याज की फसल 40 टन/हेक्टेयर उपज देने के बदले लगभग 90–95 किलो नत्रजन, 30–35 किलो फॉस्फोरस और 50–55 किलो पोटाश जमीन से लेती है। इसलिये यह आवश्यक है कि मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने और उचित उत्पादन प्राप्त करने के लिये मृदा परिक्षण आधारित समन्वित पोषण तत्व प्रबंधन को अपनाया जाऐ। प्याज की अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिये हरी खाद अथवा 15–20 टन/हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद अथवा 7.5 टन/हेक्टेयर की दर से केंचुआ खाद (वर्मी कम्पोस्ट) का प्रयोग खेत की तैयार के समय अंतिम जुताई के पूर्व करना चाहिये। प्याज में अनुशंसित रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग नीचे बताई गई तालिका के अनुसार सही मात्रा व सही समय पर करना चाहिये।

आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा व प्रयोग का समय :

पोषक तत्व	आधार (बुवाई/रोपण के समय)	रोपण के 30 दिन बाद	रोपण के 45 दिन बाद	कुल
नत्रजन (किग्रा/हेक्टेयर)	75	37.50	37.50	150
फॉफोरस (किग्रा/हेक्टेयर)	50	–	–	50
पोटाश (किग्रा/हेक्टेयर)	80	–	–	80

उर्वरक प्रयोग के विभिन्न विकल्पः

तत्व का नाम	उर्वरक की मात्रा (कि.ग्रा./हेक्टेयर)					
	विकल्प–1		विकल्प–2		विकल्प–3	
	नाम	मात्रा	नाम	मात्रा	नाम	मात्रा
(अ) बुवाई/रोपण के समय						
नत्रजन	यूरिया	163.00	यूरिया डी.ए.पी.	119.00 109.00	यूरिया एन.पी.के. (12:32:16)	122.00 156.00
फॉफोरस	सिंगल सुपर फास्फेट	312.50	–	–	–	–
पोटाश	म्यूरेट ऑफ पोटाश	134.00	म्यूरेट ऑफ पोटाश	134.00	म्यूरेट ऑफ पोटाश	92.00

(ब) रोपण के 30 दिन बाद						
नत्रजन	यूरिया	81.00	यूरिया	81.00	यूरिया	81.00
फॉस्फोरस	–	–	–	–	–	–
पोटाश	–	–	–	–	–	–
(स) रोपण के 45 दिन बाद						
नत्रजन	यूरिया	81.00	यूरिया	81.00	यूरिया	81.00
फॉफोरस	–	–	–	–	–	–
पोटाश	–	–	–	–	–	–

सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग :

- नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटाश के अलावा प्याज को सूक्ष्म पोषक तत्वों की भी आवश्यकता होती है।प्याज में तीखापन एलाईल प्रोपाईल डाईसल्फाईड नामक तत्व के कारण होता है जिसको बढ़ाने व उत्पादन में वृद्धि के लिये प्याज को सल्फर नामक सूक्ष्म तत्व की आवश्यकता होती है।
- सामान्यतः प्याज को 20 कि.ग्रा/हेक्टेयर गंधक (सल्फर) की आवश्यकता होती है लेकिन जिस मिट्टी में सल्फर का स्तर 25 कि.ग्रा/हेक्टेयर से अधिक होता है, उस मिट्टी के लिये 15 किग्रा/हेक्टेयर सल्फर पर्याप्त होता है लेकिन जिस मिट्टी में सल्फर का स्तर 25 किग्रा/हेक्टेयर से कम होता है, उस मिट्टी के लिये 30 किग्रा/हेक्टेयर सल्फर की आवश्यकता होती है। सल्फर को रोपण से पहले मिट्टी में मिला देना चाहिये।
- इसके अतिरिक्त जिंक सूक्ष्म तत्व भी प्याज के लिये आवश्यक होता है। यदि मृदा में जिंक की कमी हो तो 5 किग्रा जिंक या 25–30 किग्रा जिंक सल्फेट खाद प्रति हेक्टेयर की दर से रोपाई से पहले मिट्टी में मिला देना चाहिये अथवा0.5 प्रतिशत की दर से रोपण के 45 और 50 दिन बाद खड़ी फसल में छिड़काव कर देना चाहिये।

नर्सरी की तैयारी :

क्यारी बनाने से पहले जमीन को अच्छी तरह से तैयार कर लें एवं मिट्टी को अच्छी तरह से भुरभुरी कर लें। इसके बाद लगभग 1.0 मीटर चौड़ी तथा सुविधानुसार लंबाई की क्यारी बना लें।दो क्यारियों के बीच में कम से कम 30 सेमी की दूरी होनी चाहिये जिससे कि क्यारियों में निराई–गुड़ाई का कार्य आसानी से हो सके। क्यारी बनाने के बाद मिट्टी में 5 कि.ग्रा./वर्ग मीटर के हिसाब से कम्पोस्ट या गोबर की खाद तथा 15–20 ग्राम/वर्ग मीटर की दर से सिंगल सुपर फास्फेट मिला लें।500 वर्ग मीटर क्षेत्र में तैयार की गई नर्सरी की पौध एक हेक्टेयर क्षेत्र में फसल उगाने के लिये पर्याप्त होती है। बीजों को क्यारियों में बोने से पूर्व बाविस्टिन नामक फफूंदीनाशक दवा से 2 ग्राम या ट्राइकोडर्मा विरडी से 5 ग्राम प्रति किग्रा प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करें। उपचारित बीजों को 5–10 सेमी के अंतर पर बनाई गई कतारों में 1 से 2 सेमी की गहराई पर बोएं। इसके बाद कम्पोस्ट खाद या मिट्टी की हल्की परत से बीजों को ढ़ककर झारे से पानी देंवे। अंकुरण के पश्चात् पौध को जड़ गलन बीमारी से बचाने के लिये 2 ग्राम बाविस्टिन दवा को एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

पौध रोपण :

बुवाई के लगभग 55–60 दिन बाद जब पौध लगभग 15 सेंमी ऊंचाई की हो जाए, तब वह खेत में रोपण के लिये उपयुक्त होते है। छोटी या बड़ी उम्र की पौध की खेत में रोपण करने से कंदों का आकार छोटा रह जाता है, वे दो भागों में बंट जाते हैं, फसल में समय से पहले फूल आ जाते हैं, गर्दन मोटी हो जाती है और उनकी भंडारण क्षमता कम हो जाती है। रोपण से पूर्व पौध की जड़ों को 0.025 प्रतिशत कार्बोसल्फान–0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम के घोल में 2 घंटे डुबोकर रोपाई करें ताकि फसल को बैंगनी धब्बा रोग या अन्य फफूंद जनित रोगों से बचाया जा सके।

रोपाई करते समय कतारों के बीच की दूरी 20 सेंमी तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 सेंमी रखें।

सिंचाई :

प्याज की फसल में सिंचाई की आवश्यकता मृदा की किस्म, फसल की उम्र, मौसम और सिंचाई विधि पर निर्भर करती है। चूंकि प्याज की जड़ें भूमि में कम गहराई तक जाती है इसलिये सिंचाई हल्की पंरतु जल्दी जल्दी देना चाहियें। पौध की रोपाई के तुंरत बाद हल्की सिंचाई अवश्य करें तथा उसके 3–4 दिन बाद फिर हल्की सिंचाई करें ताकि मिट्टी नम बनी रहें व पौध अच्छी तरह खेत में जम जाए। रबी प्याज को 10–12 सिंचाई की आवश्यकता होती है। फसल पकने की अवस्था (खुदाई से 10–15 दिन पहले) पर सिंचाई बंद कर देना चाहिये।

खरपतवार नियंत्रण :

रोपण के 3 दिन बाद पेण्डीमिथालिन (30 ई. सी.) खरपतवारनाशी का 3.5 लीटर/हेक्टेयर की दर से छिड़काव तथा रोपण के 45 दिन बाद एक बार हाथ द्वारा खरपतवार निकालना लाभप्रद पाया गया है। इसी प्रकार आक्सीफ्लूरोफेन (23.5 ई.सी.) को 1.5–2.0 लीटर/हेक्टेयर की दर से रोपण के पहले या रोपण के समय छिड़काव कर सकते है। इसके अलावा रोपण के 20–25 दिन बाद आक्सीफ्लूरोफेन खरपतवारनाशी का 150–250 मि.ली./हेक्टेयर की दर से छिड़काव किया जा सकता है।

पौध संरक्षण :

प्रमुख रोगः

1. **आर्द्र विगलन (डेम्पिंग ऑफ):** यह रोग मुख्यतः नर्सरी में पौधों को नुकसान पहुंचाता है। रोगग्रस्त पौधे जमीन की सतह से गलने लगते हैं और मुरझा कर सूख जाते हैं।

नियंत्रणः

- बीज को थायरम या बाविस्टिन से 3.0 ग्राम/किलो बीज की दर से उपचारित करें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर क्यारियों पर मैंकोजेब (2.5 ग्रा/लीटर पानी) या कार्बेन्डाजिम (1 ग्रा/लीटर पानी) का छिड़काव करें।

2. **बैगनी धब्बा रोग (पर्पल ब्लॉच):** इस रोग की प्रारंभिक अवस्था में पत्तियों पर आंख के आकार के जामुनी या बैंगनी रंग के धब्बे बन जाते हैं जो कि भुरे घेरे से घिरे होते हैं। रोग संक्रमण के स्थान पर तना कमजोर होकर गिर जाता है। इस रोग का प्रकोप फरवरी–मार्च में अधिक होता है।

नियंत्रण :

- बुवाई से पहले बीजों को फफूंदीनाशक दवा थायरम + कार्बेन्डाजिम अथवा कार्बेन्डाजिम + मैंकोजेब से 3 ग्राम/किलो बीज की दर से उपचारित करें।
- मैंकोजेब या क्लोरोथैलोनील (0.25 प्रतिशत) का 4 छिड़काव या आईप्रोडियोन (0.25 प्रतिशत) का 3 छिड़काव 10 से 15 दिन के अंतराल पर करें।

3. **स्टेमफाइलम लीफ ब्लाईट :** इस रोग की शुरुआत में पत्तियों के बीच में छोटे–छोटे पीले से नांरगी रंग की धारियां विकसित हो जाती है। बाद में ये धारियां लम्बी होकर गुलाबी सिरे से घिरी हुई धब्बों में बदल जाती है। ये धब्बे धीरे–धीरे पत्तियों के शीर्ष से निचे की तरफ फैलने लगते है और अंत में आपस में मिलकर पूरी पत्तियों को झुलसा या जला देते है।

नियंत्रण :

- इस रोग के नियंत्रण के लिये मैंकोजेब या क्लोरोथैलोनील (0.25 प्रतिशत) फफूदीनाशक का 10 से 15 दिन के अंतर से 3 से 4 छिड़काव करें।

4. **मृदु रोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू) :** यह रोग फफूंद के द्वारा फैलता है। पत्तियों पर बैगनी रंग के रोऐ उभर आते है जो बाद में हरा रंग लिये पीले हो जाते है। अंत में प्रभावित पत्तियाँ सूख कर गिर जाती है।

नियंत्रणः

- डायथेन एम–45 (0.3प्रतिशत) या डायथेन जेड–78 (0.3प्रतिशत) का 600–700 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

5. **जीवाणु मृदु गलनः** इस रोग के कारण प्याज के कंद भंडारगृह में सड़ जाते है। रोग का संक्रमण खेत से ही

शुरू हो जाता है तथा रोग से प्रभावित कंदों को दबाने पर पानी जैसा तरल पदार्थ निकलता है।

नियंत्रणः

- कंदों को हवादार तथा कम नमी वाले भंडार गृहों में कंदों को अच्छी तरह से सुखाकर, उनके उपरी छिलकों की छंटाई कर रखना चाहिये।

प्रमुख कीट :

1. **थ्रिप्सः**यह प्याज के फसल को नुकसान पहुँचाने वाला सबसे अधिक हानिकारक कीट है। यह कीट छोटा सा पीले रंग का होता है जो पत्तियों का रस चूसकर उनमें छोटे छोटे सफेद धब्बे बना देता है। पत्तियों के शीर्ष पीले होकर मुरझाने लगते है और पौधा सूख जाता है।फलस्वरूप कंद छोटे रह जाते है तथा उपज में गिरावट आ जाती है। यह कीट फूल आने के समय अधिक नुकसान पहुँचाता है। जब आर्थिक क्षति स्तर 30 थ्रिप्स प्रति पौधे हो जाए तभी कीटनाशक का छिड़काव करना चाहिये।

नियंत्रणः

- खेत में प्याज का रोपण करने से पूर्व दानेदार फिप्रोनील का 10 कि.ग्रा./हेक्टेयर की दर से भूमि में मिलाऐं।
- फिप्रोनील 5%एस.सी. (0.1%),स्पाईनोसेड 45% एस. सी. (0.1%), प्रोफेनोफॉस 50% ई.सी. (0.2%) या कार्बोसल्फसन (0.2%) का 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिन के अंतराल पर 3 से 4 छिड़काव करें।
- रोपाई के 2, 6 एवं 10 सप्ताह बाद कार्बोफ्यूरान या फोरेट का 20–25 किग्रा/हेक्टयर की दर से छिड़काव करें।

2. **रेड स्पाईडर माइट :** इस कीट के प्रौढ़ तथा निम्फ पत्तियों की निचली सतह पर रहकर फसल को नुकसान पहुंचाते हैं।इस कीट से ग्रसित पौधे की पत्तियां पूरी तरह से खुल नही पाती और पूरा का पूरा का पौधा जलेबी की तरह मुड़ जाता है। ग्रसित पत्तियों के किनारे पीले हो जाते है।

नियंत्रण :

- फसल पर घुलन पोटाश सल्फर (0.2%)–डाईमिथोएट (0.03%) का छिड़काव करें।
- डाईकोफॉल कीटनाशक का 2 मिली/लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें।

3. **शीर्ष छेदकः** इनकी इल्लियाँ पत्तियों के आधार को खाकर कंद के अंदर प्रवेश कर जाती है और सड़न पैदाकर फसल को नुकशान पहुँचाती है।

नियंत्रणः

- प्रोफेनोफॉस दवा 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।
- रोपण से पूर्व दानेदार फिप्रोनील का 10 किग्रा/हेक्टेयर की दर से भूमि में मिलाऐं।

खुदाई :

प्याज की फसल चार से पाँच माह में पक जाती है। जब 50 से 60 प्रतिशत पौधों की पत्तियाँ पीली पड़कर मुरझाने लगे तब कंदों की खुदाई की उपयुक्त अवस्था होती है।

सुखाना :

खुदे हुऐ कंदो को पत्तियों के साथ ही 2–3 दिन खेत में ही सुखाऐं। उसके बाद 2 से 2.5 सेमीं ऊचाई छोड़कर पत्तों को काट दें। कंदों को 5–7 दिन तक छाया में छायादार स्थान पर छोटे–छोटे ढेर बनाकर रखते जाएं। इससे कंदों में मौजूद नमी कम हो जाएगी व इन कंदों को भंडारित करने पर भंडारण के दौरान सड़न गलन से बहुत कम नुकसान होता है। जब कंद की गर्दन अच्छी तरह से सूखकर बंद हो जाऐ तथा छिलका पूर्णतयाः सूखकर हाथ से पकड़ने पर कड़–कड़ की आवाज करने लगे तो समझना चाहिये कि कंद पूर्णरूपेण सूख गए है ।

उपज :

प्याज की उपज मुख्यतः किस्मों एवं लगाए जाने वाले मौसम पर निर्भर करती हैं लेकिन यदि वैज्ञानिक व उन्नत तरीके से खेती की जाए तो औसतन 300–350 क्विटल/हेक्टेयर तक औसत उपज प्राप्त हो जाती है।

जैविक खेती एवं उसके प्रभाव

रविन्द्र कुमार रेकवार, अजिन एस अनिल एवं अभिक पात्रा,
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन संभाग,
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–12

प्राकृतिक तरीके से की जाने वाली खेती जैविक खेती का एक उदाहरण है, जिसमें उर्वरकों या कीटनाशकों के रूप में किसी भी रासायनिक पदार्थों का उपयोग नहीं किया जाता। जैविक खेती के लिए केवल जैविक अपशिष्ट, खेतों के अपशिष्ट, पशु अपशिष्ट, खाद आदि जैसे प्राकृतिक खादों का उपयोग किया जाता है। यह मुख्यतः मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने के साथ फसल–उत्पाद गुणवत्ता को भी बढाती है। जैविक खेती के लिए जैव–उर्वरकों या कार्बनिक खादों के माध्यम से पोषक तत्वों की आपूर्ति, फसल चक्र, मिश्रित खेती और जैविक कीट नियंत्रण आदि जैसे कुछ तकनीकियों का पालन किया जाता है

जैविक खेती

जैविक खेती में फसल विकास, कीट नियंत्रण, पोषक तत्व प्रदान करने के लिए केवल जैव–उर्वरकों और जैविक सामग्री उपयोग को ध्यान रखा जाता है। हालांकि भारत में, अधिक एवं गुणवत्तायुक्त फसल उत्पादन के लिए प्राचीन समय से ही जैविक खेती ही उपयुक्त माध्यम है। प्रदूषण मुक्त फसलचक्र इस तरह की खेती के मुख्य घटकों में से एक है। साथ ही फसलचक्र द्वारा ही जैविक खेती के लिए मृदा उर्वराशक्ति एवं मृदा को स्वस्थ बनाए रखने का अधिकतर प्रयास किया जाता है। प्रत्येक फसल के बाद, किसान वायुमंडलीय नाइट्रोज (फसल उत्पादन के लिए आवश्यक एक महत्वपूर्ण खनिज) के साथ मृदा उर्वरता बनाये रखने के लिए दलहनी फसलों के साथ अन्य फलदार पौधों को भी उगाते हैं। ये फलदार पौधे अपनी जड़ों की ग्रंथि के माध्यम से मृदा में नाइट्रोजन संग्रह कर उसे पुनः एक बार फिर उपजाऊ बना देते हैं।

जैविक खेती के प्रकार

भारत जलवायु, मृदा, फसल उगाने की विधि, समय अनुसार विविधता वाला एक देश है तथा देश भर में जैविक खेती के लिए विभिन्न तरीकों का प्रयोग किया जाता है और यह काफी हद तक देश की मृदा और मौसम की स्थिति पर निर्भर करता है। जैविक खेती के प्रमुख रूप से दो प्रकार से कर सकते हैं:

1. एकीकृत जैविक खेती

देश भर में एकीकृत जैविक खेती प्रचलन में है। जैविक खेती में दो प्रमुख पोषक तत्व प्रबंधन और कीट प्रबंधन तरीके हैं। प्रचीन समय से ही भारतीय गांवों में किसान जैविक खेती के लिए प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से सभी आवश्यक पोषक तत्वों के द्वारा फसलों की पूर्ण पौष्टिकता को बनाये रखने का प्रयास करते रहे हैं। इसके अलावा, पौधों को कीटों से क्षतिग्रस्त होने से रोकने के लिए प्राकृतिक तरीके का इस्तेमाल करते हैं।

जैविक खेती के एकीकृत तरीकों से फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए सरकार ने नए वैज्ञानिक विकास के माध्यम से किसानों को शिक्षित और प्रशिक्षित करने के लिए किसान जागरूकता अभियान की शुरूआत की है। जिसके परिणास्वरूप, एकीकृत जैविक खेती अत्यधिक लोकप्रिय हुई है जिसके कारण उत्तर–पूर्वी राज्यों जैसे पहाड़ी क्षेत्रों में फसल उपज में सुधार तथा जैविक खेती का क्षेत्रफल भी बढ़ा है। एकीकृत जैविक खेती के माध्यम से कृषि में सुधार लाने के लिए सिक्किम को एक शानदार उदाहरण के रुप में पेश किया जा रहा है।

एकीकृत खेती में सुधार के लिए प्रगतिशील शोध के माध्यम से सम्मलित प्रयास के परिणामस्वरूप फसलचक्र, डबल और ट्रिपल फसल प्रणालियां का एकीकृत कृषि पद्धतियों का व्यापक रुप से उपयोग हो रहा है जिससे जैविक खेती के एकीकृत तरीकों के माध्यम से किसान वर्षों बाद अपनी आय बढ़ाने में सक्षम हो पाया है।

2. शुद्ध जैविक खेती:

शुद्ध जैविक खेती, जिसमें किसान खेती के लिए केवल जैव–उर्वरक, जैविक खाद और जैव–कीटनाशकों का उपयोग करता हैं। विशेष रूप से इस तरह की खेती में उपयोग किये जाने वाले कीटनाशक रसायन मुक्त होते हैं। ये कीटनाशक नीम जैसे प्राकृतिक पदार्थों के माध्यम से बने होते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि शुद्ध जैविक खेती में रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग न करते हुए इस तरह की खेती की जाती है। जिससे फसल–उत्पाद एवं मृदा स्वास्थ्य पर किसी तरह का दुष्प्रभाव न हो।

3. विभिन्न कृषि प्रणालियों का एकीकरण:

विभिन्न कृषि प्रणालियों के एकीकरण में नियमित फसल घटकों के साथ–साथ मुर्गी पालन, मशरूम उत्पादन, बकरी तथा मछली पालन आदि जैसे कई अन्य घटक भी शामिल किये जाते हैं।

जैविक खेती हेतु विभिन्न प्रबन्धन अपनाएँ

जैविक खेती की प्रक्रिया के दौरान सभी विभिन्न प्रबंधनों का एक साथ पालन करने की आवश्यकता होती है:

1. मृदा प्रबंधन: मृदा प्रबंधन जैविक खेती के लिए अति आवश्यक कारक है। यह एक प्रसिद्ध तथ्य है कि एक बार फसल लेने के बाद, खेतों की मिट्टी में अधिकांश पोषक तत्वों की कमी हो जाती है जिससे मृदा उर्वरता क्षमता कम हो जाती है। सभी जरूरी पोषक तत्वों के साथ मिट्टी की उर्वरताशक्ति को बनाये रखने की प्रक्रिया को मृदा प्रबंधन कहा जाता है। जैविक खेती में मिट्टी की उर्वरक क्षमता को बढ़ाने के लिए प्राकृतिक श्रोतों के माध्यम से पोषक तत्वों का उपयोग किया जाता है। इस उद्देश्य के लिए, आवश्यक पोषक तत्वों के लिए पशु अपशिष्टों, जैव–उर्वरक या जैविक खादों का उपयोग किया जाता है। जिससे इन जैविक पदार्थों में मौजूद बैक्टीरिया एक बार फिर से मिट्टी को उपजाऊ बना देते हैं।

2. खरपतवार प्रबंधन: फसल उत्पादन के दौरान मिट्टी से अवांछित पौधों को साफ करने के लिए जैविक खरपतवारनाशी या क्रियाओं का इस्तेमाल किया जाता है। ये खरपतवार फसलों के साथ खेतों में बढ़ते हैं एवं मृदा में उपस्थित अधिकतर पोषक तत्वों का अपनी जीवनचक्र को पूरा करने के लिए उपयोग करते हैं, जिससे फसल उत्पादन प्रभावित होता है। खरपतवारों को कम करने के लिए किसान कुछ महत्वपूर्ण तकनीकों को अपना सकते हैं जैसे घास आच्छादन या निराई गुडाई द्वारा खरपतवारों के विकास एवं उनकी संख्या में कमी लायी जा सकती है।

3. फसल विविधता: फसल विविधता जैविक खेती के सबसे महत्वपूर्ण तरीका है और इसके लिए मोनोकल्चर एवं पॉलीकल्चर जैसे फसलों का उपयोग करते हैं। जैविक खेती के मोनोकल्चर में, किसान एक समय में केवल एक ही फसल का उपयोग कर सकता हैं, जबकि पॉलीकल्चर के अंतर्गत एक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की फसलों जैसे अनाज वाली फसल के साथ–साथ दलहनी या सब्जियों या चारे वाली फसल को लेकर लाभ उठा सकता हैं। जैविक खेती के पॉलीकल्चर से मिट्टी के सूक्ष्मजीवों को और अधिक उपजाऊ बनाने में सहायता मिलती है।

4. हानिकारक जीवों को नियंत्रित करना: जैविक खेती फसल उत्पादन क्षमता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाली कृषि में मौजूद हानिकारक जीवों को नियंत्रित करने पर अधिक जोर देती है। किसान इसके लिए कीटनाशकों के रूप में गौमूत्र इत्यादि का उपयोग करते हैं, जैविक खेती में केवल प्राकृतिक कीटनाशकों का ही उपयोग किया जाता है।

5. हरी खाद का उपयोग: जैविक खेती में, किसान हरी खाद के रूप में ढेंचा, इत्यादि का उपयोग हरी खाद के रूप में करते हैं। मिट्टी की उर्वरता क्षमता तथा पोषक तत्वों को बढ़ाने के लिए इन फसलों को खाद के रुप में मिट्टी को उपजाऊ बनाने के लिए उपयोग किया जाता है।

6. मिश्रित खाद का उपयोग: इस प्रक्रिया में किसान एक गड्ढा खोदकर उसमें हरे अपशिष्ट और पानी के क्षय को मिलाकर खाद तैयार करता हैं और बाद में इस समृद्ध खाद और पोषक तत्वों को मिट्टी उर्वरता क्षमता बढ़ाने के लिए खेतों में उर्वरक के रूप में प्रयोग करता है।

जैविक खेती का महत्व

जैविक खेती प्राकृतिक रूप से स्वस्थ्य बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण तरीका है। जैविक खेती के माध्यम से पर्यावरण शुद्ध रहता है और कम प्रदूषित होता है इसके अलावा, जैविक खेती मनुष्य एवं पशुओं को स्वस्थ भोजन प्रदान करने के लिए भी एक उत्तम माध्यम है। जिससे मानवजाति के स्वच्छ जीवन एवं स्वस्थ्य शरीर को बनाए रखने में भी मदद करता हैं। जब लोग जैविक प्रक्रियाओं से उत्पादित शुद्ध एवं स्वस्थ भोजन को ग्रहण करते हैं तो वे अनेक प्रकार के घातक बीमारियों से दूर रखते हैं। साथ ही जैविक खेती में उपयोग किए जाने वाले प्राकृतिक खादों की वजह से मिट्टी और अधिक बेहतर स्थिति में उपजाऊ हो जाती है।

जैविक खेती के फायदे

1. अनुउपजाऊ मृदा को उपजाऊ बनानाः जैविक खेती पर्यावरण प्रदूषण के साथ–साथ मृदा से पोषक तत्वों के क्षरण को रोकने का सबसे अच्छा तरीका है। कुछ क्षेत्रों में जहां रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग के कारण मृदा के स्वास्थ्य में गिरावट आ रही है, वही जैविक खेती आवश्यक पोषक तत्वों के माध्यम से पुनः मृदा को स्वस्थ करने में अपना योगदान देती है।

2. मृदा की गुणवत्ता में सुधारः जैविक खेती में जैविक पदार्थों का उपयोग किया जाता है, इसलिए ये फसलों की अच्छी गुणवत्ता के साथ–साथ उच्च उत्पादन के लिए मृदा की इष्टतम स्थिति को बनाए रखने में मदद करती है। क्योंकि इस तरह की खेती मृदा में विभिन्न आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति करती है और इसके अलावा यह मृदा में पोषक तत्वों की मात्रा, सूक्षम जीवों की संख्या, जल धारण क्षमता इत्यादि को बनाए रखने में भी सहायता करती है।

3. उच्च गुणवत्ता का फसल–उत्पादः जैविक खेती द्वारा प्राप्त फसल–उत्पाद पारम्परिक खेती की तुलना में उच्च गुणवत्ता वाला प्राप्त होता है तथा जैविक खेती से प्राप्त उच्च गुणवत्ता वाला उत्पाद की कीमत भी बाजार में अधिक मिलती है साथ ही साथ मानव जाति का अच्छा स्वास्थ्य बनाए रखने में भी अहम् भूमिका निभाती है।

4. रासायनिक खाद की आवश्यकता नहींः किसान जैविक खेती में केवल प्राकृतिक और जैविक खाद का ही उपयोग करता हैं इससे उन्हें किसी भी रासायनिक खाद को खरीदने की आवश्यकता भी नहीं होती और उनके खर्चें भी काफी कम हो जाते हैं।

जैविक खेती के नुकसान

1. उच्च उत्पादन लागतः जैविक खेती के लिए किसानों को इसके साथ जुड़े विभिन्न कार्यों को सुचारू रूप से करने के लिए अधिक जनशक्ति की आवश्यकता होती है जो फसल उत्पादन लागत को बढ़ाती है।

2. फसल उन्पादन में कमीः पारंपरिक खेती की तुलना में जैविक खेती के माध्यम से किसानों को फसल उपज अत्यधिक नहीं मिलती है। जिसके कारण, इसकी कुल आमदनी पारंपरिक खेती से कभी–कभी कम होती है।

मानव जनसंख्या के स्वस्थ्य एवं दीर्घायु जीवन के लिए, मृदा को प्राकृतिक तरीके से स्वस्थ्य बनाये रखने और स्वस्थ भोजन का उत्पादन करने के लिए जैविक खेती आवश्यक होती है। हालांकि किसान कम फसल उपज से प्रभावित हो जाते हैं, परन्तु फिर भी भविष्य की पीढ़ियों के लिए पारिस्थितिक और पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने के साथ प्राकृतिक रूप से जीवन का नेतृत्व करने के लिए जैविक खेती की आवश्यक हो जाती है। वर्तमान परिदृश्य में रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग के कारण हमारे कृषि क्षेत्रों की दिन प्रति दिन प्रदूषित एवं खराब हो रहा है। इसीलिए केवल जैविक खेती ही मानव आबादी के स्वस्थ्य एवं दीर्घायु जीवन, मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय संतुलन को उत्तम बनाये रखने का माध्यम है।

कीटनाशकों का प्रयोग, भण्डारण और निस्तारण– जानकारी व सावधानियाँ

नीरज पतंजलि, इंदु चोपड़ा, एवं अनुपमा सिंह
कृषि रसायन संभाग,
भा.कृ.अनु.प–भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थानए नई दिल्ली–110012

आधुनिक कृषि में कीटनाशकों के बिना कीट नियंत्रण की कल्पना करना भी कठिन है। पिछली सदी में कीटनाशकों ने न केवल कृषि के उत्पादन में वृद्धि की है बल्कि मलेरिया आदि जैसे जानलेवा रोग की रोकथाम कर लाखों जीवन भी बचाये हैं। परन्तु किसानों तथा अन्य लोगों, जो कीटनाशकों के प्रयोग व् संचालन से सीधे तौर पर जुड़े होते हैं, पर कीटनाशकों व् उनके अवशेषों का दुष्प्रभाव पड़ने के आसार बाकि लोगों की तुलना में अधिक होते हैं। यदि इन कीटनाशकों का प्रयोग सावधानीपूर्वक ना किया जाए तो परिणाम घातक हो सकते हैं अतः कीटनाशकों का उचित व् सावधानीपूर्वक प्रयोग अति अनिवार्य है। डिब्बे पर दिए गए निर्देशों का पालन करना किसी भी कीटनाशक के सुरक्षित प्रयोग के लिए पहली कड़ी है। इसलिए सुरक्षा निर्देशों को ध्यानपूर्वक पढ़ें एवं उनका पालन करें। हर कीटनाशक के डिब्बे पर एक दूसरे के विपरीत जुड़े हुए त्रिकोणों द्वारा उनकी विषाक्तता को दर्शाया जाता है। ऊपर वाले त्रिकोण में अंग्रेजी में चेतावनी वाक्य लिखा होता है जबकि नीचे वाले त्रिकोण में रंग के द्वारा चेतावनी निर्देश दिया जाता है। यह रंग लाल, पीला, नीला अथवा हरा होता है। त्रिकोण में दर्शाया गया लाल अथवा पीला रंग कीटनाशक की अत्यधिक विषाक्तता को दर्शाता है। अतः ऐसे कीटनाशकों को उपयोग करते समय अत्यधिक सावधानी बरते जाने की आवश्यकता होती है। विषाक्तता को लीथल डोज (ओरल) द्वारा मापा जाता है। यह वो मात्रा होती है जो मुंह के द्वारा यदि शरीर में पहुँच जाए तो प्राणघातक सिद्ध होती है। सामान्यतः इसे मिलीग्राम प्रति किलोग्राम (मि.ग्रा./कि.ग्रा.) में दर्शाया जाता है। यह मात्रा जितनी कम होगी पेस्टिसाइड उतना ही विषैला होगा। नीचे दी गयी सारणी में चेतावनी संकेतों को दर्शाया गया है:

चेतावनी संकेत	पहचान	विषाक्तता परिमाप	ओरल लिथल डोज (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	उदाहरण
	ऊपर के त्रिकोण में अंग्रेजी के x के आकार में हड्डियों के ऊपर खोपड़ी रखी होती है एवं अंग्रेजी में POISON (जहर) लिखा होता है। नीचे का त्रिकोण लाल रंग का होता है	अत्यंत जहरीला	1–50	मोनोक्रोटोफोस, जिंक फोसफाईड
	ऊपर के त्रिकोण में अंग्रेजी में POISON (जहर) लिखा होता है। नीचे का त्रिकोण पीले रंग का होता है	अत्यधिक जहरीला	51–500	कार्बारिल, कुनालफोस
	ऊपर के त्रिकोण में अंग्रेजी में DANGER (खतरा) लिखा होता है। नीचे का त्रिकोण नीले रंग का होता है	औसत दर्जे का जहरीला	501–5000	मेलाथिओन, थिरम, ग्लायफोसेट
	ऊपर के त्रिकोण में अंग्रेजी में CAUTION (सावधान) लिखा होता है। नीचे का त्रिकोण हरे रंग का होता है	कम जहरीला	>5000	मेंकोजेब, ओक्सिफ्लोरफेन

कीटनाशक खरीदते समय सावधानियाँ

- केवल वही कीटनाशक खरीदें जिसकी सिफारिश विशेषज्ञ द्वारा वांछित कीट के नियंत्रण के लिए की गई हो। इसकी जानकारी कृषि किसान केन्द्रों द्वारा ली जा सकती है। केवल दुकानदार की सिफारिश से कीटनाशक का चुनाव न करें।
- कीटनाशक केवल अधिकृत विक्रेता/लाइसेंसी दुकान से ही खरीदें।
- खरीदते समय पहले कीटनाशक के डिब्बे पर बैच संख्या, रजिस्ट्रेशन नंबर, निर्माण एवं समाप्ति की तिथि (manufacture/ expiry date) अवश्य देख लें।
- कीटनाशक खरीदते समय दुकानदार से पक्का बिल लें जिस पर कीटनाशक का नाम, बैच संख्या तथा कम्पनी का नाम लिखा हो।
- कीटनाशक हमेशा सीलबंद डिब्बा या पैकेट में ही खरीदें, खुला न लें।
- केवल उतना ही बड़ा कीटनाशक का डिब्बा खरीदें जितना खेत में एक बार के प्रयोग के लिए आवश्यक हो।
- इसके अलावा यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कीटनाशक को खाने की सामग्री के साथ रखकर न ले जाएँ और न ही इसे कंधे या सिर पर ढो कर ले जाएँ।

कीटनाशकों को मिलाते समय सावधानियाँ

डिब्बे में दिए गए परिपत्र (पैम्फलेट) को ध्यानपूर्वक पढ़ें। उसमें प्रयोग मात्रा व् लक्षित कीटों से सम्बन्धित जानकारी का विवरण दिया जाता है। ज्यादातर कीटनाशकों को इस्तेमाल से पहले पानी में मिलाना की आवश्यकता होती है। कभी कभी एक से अधिक कीटनाशकों का मिश्रण भी बनाना पड़ता है। अक्सर इस समय सावधानी न बरतने पर किसान कीटनाशकों के सीधे संपर्क में आ जाते हैं जोकि उन्हें नुकसान पहुँचा सकता है। इसलिए कीटनाशकों का प्रयोग करते समय निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखें:

- मिश्रण/घोल हमेशा साफ पानी में और खुले हवादार स्थान पर ही बनाएं जहाँ प्रकाश भी पर्याप्त हो घोल को स्प्रेयर में ही बनाएं, अलग बर्तन में न बनाएं। आम तौर पर दस्ताने पहनकर घोल बनाने की सिफारिश की जाती है। यदि दस्ताने उपलब्ध नहीं हों तो हाथों में पॉलिथीन पहन कर काम करें।
- कीटनाशकों के पैकेट को काटने के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले चाकू या कैंची को किसी अन्य काम के लिए इस्तेमाल न करें। भूल कर भी कीटनाशक के पैकेट को दांतों से ना काटें।
- हमेशा कीटनाशक को सिफारिश की गई मात्रा में ही मिलाएं कभी भी अंदाज से कीटनाशी मिश्रण तैयार ना करें।
- कीटनाशकों को हमेशा जमीन पर रख कर ही घोलें ताकि कीटनाशकों के छींटे आँखों में जाने की सम्भावना को कम किया जा सके।
- घोल को कभी भी हाथों से न मिलाएं। इस काम के लिए किसी लकड़ी आदि का प्रयोग कर सकते हैं जिसे काम होने के बाद सावधानीपूर्वक धो कर फेंक दें।

कीटनाशकों का छिड़काव करते समय सावधानियाँ

कीटनाशकों का छिड़काव अत्यंत संवेदनशील प्रक्रिया है जिसे सही ढंग से किया जाना प्रयोगकर्ता की सुरक्षा एवं वांछित नियंत्रण दोनों के लिए अनिवार्य है।

- कीटनाशक स्प्रे के उपकरणों का रखरखाव अच्छे से करें। टपकते वाल्व या ढीले जोड़ वाले उपकरणों के प्रयोग से बचें।
- कीटनाशकों के छिड़काव को इस तरह प्लान करें कि छिड़काव के तुरंत बाद किसी को खेत में ना जाना पड़े।
- छिड़काव हमेशा बताये गए समय पर एवं अनुकूल मौसम (हवा की गतिः 2–9 कि.मी./घं., तापमानः 25 डिग्री से. से कम, आद्रताः 40ः से अधिक) में ही करें।
- स्प्रे करते समय पीठ हवा की दिशा में रखें।
- स्प्रे करते समय पूरी बाँह के कपड़े, हाथों में दस्ताने व् आँखों पर चश्मा पहनें।

- कभी भी स्प्रे उपकरण की रुकी हुई नालियों या नोजल को खोलने के लिए मुँह से फूँक न मारें।
- जल के स्रोतों जैसे तालाब, नदी आदि के पास एवं पशुओ के रहने या बाँधने के स्थान के निकट कीटनाशी इस्तेमाल करते समय ये सुनिश्चित करें कि वे कीटनाशक के संपर्क में ना आयें।
- खरपतवार नाशी इस्तेमाल करते समय ये सुनिश्चित करें कि इस्तेमाल किया जा रहा खरपतवार नाशी पड़ोस के खेतो में ना जायें। यह पड़ोस के खेत को नुकसान पहुँचा सकता है।

कीटनाशकों के भंडारण एवं निस्तारण हेतु सावधानियाँ

कीटनाशकों का भंडारण बेहद जिम्मेदारी का कार्य है। कीटनाशकों से जुड़े बहुत से हादसे गलत तरीके से किये गए भंडारण के कारण होते हैं। इसलिए भंडारण एवं निस्तारण करने से पहले नीचे दी गयी बातों पर अवश्य ध्यान दें:

- कीटनाशकों का भण्डारण करते समय इन्हें बच्चों की पहुँच से दूर रखें।
- कीटनाशकों को नमी वाले स्थानों एवं सूर्य की सीधी किरणों से दूर रखें।
- कीटनाशी डिब्बे के अलावा किसी और डिब्बे में कीटनाशकों का भंडारण कदापि न करें।
- खाने–पीने की चीजों के निकट एवं जल स्त्रोतों के निकट भूलकर भी कीटनाशियों का भंडारण न करें।
- कीटनाशक को कभी भी खाने–पीने के इस्तेमाल में आने वाले बर्तनों में ना डालें।
- यदि कभी कीटनाशक फर्श पर गिर जाए तो उसे सावधानी निर्देशों के अनुसार तुरंत साफ करें एवं अपशिष्टों का भी निर्देशानुसार निपटान करें।
- कीटनाशक के खाली डिब्बे को कभी भी खुले में ना फेकें और न ही उसे जलाएँ बल्कि पैकेट पर दिए गए निर्देशानुसार ही निपटान करें।

इस बात में कोई संशय नहीं है कि कीटनाशकों के प्रयोग ने फसल में कीट नियंत्रण को सरल बना दिया है परन्तु यह भी सत्य है कि यदि इनका प्रयोग सही ढंग से न किया जाए तो ये मनुष्यों के साथ साथ प्रकृति के लिए भी नुकसानदायक सिद्ध हो सकते हैं। इसलिए कीटनाशकों को खरीदने से लेकर उनके निस्तारण तक अत्यंत सावधानी बरतने की आवश्यकता है ताकि स्वयं एवं दूसरों को इनके दुष्प्रभावों से बचाया जा सके।

हरी खाद– भूमि की उर्वरता को बढ़ाने का सर्वोत्तम साधन

आशीष चौरसिया, संजीव कुमार गुप्ता एवं दुर्गेश सिंह
सस्य विज्ञान विभाग,
बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर, बिहार

हमारे देश में भूमि की उर्वरा शक्ति बहुत ही भिन्न स्तर की है। इसका कारण यह है कि हमारा देश गर्म जलवायु प्रधान है। लगभग वर्ष के अधिकांश अवधि में गर्मी की प्रधानता रहती है। गर्म जलवायु में भूमि का जैविक अंश ईंधन के समान जल जाता है। यदि निरंतर इस अंश से भूमि में बनाये न रखा जाय तो भूमि की उर्वरता को स्थिर नहीं रखा जा सकता, इसका प्रमाण यह है कि ऐसी भूमि में उगाई फसलों की औसत उपज बहुत ही कम होती है। जैविक अंश को प्रदान करने वाले साधन जैसे–गोबर, विष्ठा कम्पोस्ट विभिन्न प्रकार की खलियाँ तथा हरी खादें हैं। विष्ठा की खाद कृषक प्रयोग ही नहीं करते, कम्पोस्ट का प्रयोग भी कई कारणों से किसान नहीं कर पाते हैं, जिसका मुख्य कारण कम्पोस्ट के लिए प्रयोग किये जाने वाले जैविक पदार्थों का अभाव, श्रम तथा पानी का अभाव है। अगर किसान कम्पोस्ट का प्रयोग करते भी है तो चार–पाँच वर्ष में एक बार करते हैं। खलियाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाता है तथा काफी मंहगी भी होती है। इस प्रकार हरी खाद ही सबसे सस्ती और सर्वोतम साधन है। जो भूमि की उर्वरता को स्थिर रख सकती है। विशेषतः गरीब व निर्धन कृषकों के लिए गोबर की खाद के अभाव में यह सर्वोतम साधन साबित हो सकती है क्योंकि इस समय उर्वरक बहुत ही मंहगे और हानिकारक प्रभाव भी डाल रहे हैं। हरी खाद वह खाद है जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने वाली फसलों को हरी दशा अथवा पकने के निकट पहुँचने की अवस्था में खेत में जोत कर दबा देने से प्राप्त होता है।

हरी खाद के लिए उपयुक्त फसल चुनते समय ध्यान देने योग्य बातें–

हरी खाद के लिए फसल चुनते समय उसमें निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है, जिसका हमें विशेष ध्यान रखना चाहिएः–

- फसल शीघ्र उगने वाली हो।
- फसल में वनस्पतिक भाग अधिक होना चाहिए।
- मुलायम तने वाली फसल हो जिससे वह शीघ्रता से सड़ सके।
- गहरी जड़ वाली फसल हो जिससे कि वह भूमि को खुला बना सके।
- फसल का बीज सस्ता व आसानी से उपलब्ध होने वाला हो।
- सूखे को सहन करने वाली फसल होनी चाहिए तथा अधिक नमी होने पर भी खड़ी रहे।
- कमजोर व कम उपजाऊ भूमि में भी उग सकने वाली फसल हो।
- फसल ऐसी होनी चाहिए जिसकी बुवाई के लिए विशेष तैयारी न करना पड़े व जिसकी जड़ों पर प्रचुर मात्रा में ग्रन्थियाँ हो जो कि भूमि में संस्थापित कर सके।
- फसल रोग व कीट अवरोधी होनी चाहिए।
- फसल चक्र में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाली हो तथा भूमि की उर्वरता में अधिक से अधिक सहायक हो।
- प्रचुर मात्रा में बीज पैदा करने तथा भूमि पर लाभदायक अवशेष छोड़ने वाले हो।
- फसल की देख–रेख तथा प्रबन्धन की कोई विशेष आवश्यकता न हो।

हरी खाद के लिए प्रयोग किये जाने वाली प्रमुख फसलें

हरी खाद के लिए जो फसलें उगाई जाती है वो दो प्रकार की होती है–

फलीदार फसलें तथा बेफलीदार फसलें

फलीदार फसलें

इन फसलों की सबसे विशेषता यह है कि कार्बनिक पदार्थ प्रदान करने के साथ वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन का भी स्थिरीकरण करती हैं। इससे मिट्टी की भौतिक दशा सुधरती है तथा जल अवशोषण की क्षमता के साथ–साथ मिट्टी की नाइट्रोजन में प्रर्याप्त वृद्धि होती है। ये मिट्टी में बहुत जल्दी विच्छेदित भी होती है, ये हल्की मिट्टी, जिसमें नाइट्रोजन कम हो, भी अच्छी तरह उपज देती है। इनमें निम्नलिखित फसलें प्रयोग में लाई जाती हैं –

(1) सनई (*Crotalaria juncea*)

यह सबसे अच्छी और सबसे अधिक खाद के लिये प्रयोग किये जाने वाली फसल है यह वर्षा आरम्भ होन के साथ ही बोई जाती है। हरी खाद के प्रयोग में आने वाली फसलों में जो उचित गुण होने चाहिये वे लगभग सभी गुण इस फसल में पाये जाते हैं। इसमें तने कोमल व शीघ्र सड़ने वाले होते हैं। अधिक से अधिक हरा पदार्थ प्रदान करता है क्योंकि यह कुछ हफ्तों में 4–5 फीट लम्बा हो जाता है। यह कमजोर भूमि में भी अच्छी तरह से उपजता है। लेकिन अधिक नमी वाली दलदली भूमि इसके लिए अनुपयुक्त होती है। यह अति उत्तम हरी खाद की फसल है। यह खरपतवारनाशी की वृद्धि को भी रोकती है तथा कम पानी मिलने पर भी यहा फसल मरती नहीं है।

(2) ढैचा (*Sesbania aculeata*)

सनई के पश्चात हरी खाद के लिए दूसरी सबसे महत्वपूर्ण फसल है जिसे हरी खाद के लिए उगाया जाता है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि यह सूखा सहन कर सकता है। नीची भूमि जहाँ पानी इकट्ठा हो जाता है, ऊपज सकता है तथा यह लवणीय मृदा में अच्छे से ऊपज कर सकता है। यदि मिट्टी में अभीष्ट हो और बीज की जमाव अच्छा हो जाय तो अच्छी प्रकार वृद्धि करता है और सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। हमें 70–80 दिन के बाद इसे जोतकर मिट्टी में दबाया जा सकता है।

(3) खरीफ ऋतु में होने वाली बहुत सी दलहनी फसलें जैसे कि उड़द, मूंग आदि का फली तोड़ने के बाद वही खाद के रुप में प्रयोग किया जाता है। ग्वार भी हरी खाद के लिए उत्तम फसल होती है। इसका प्रयोग उत्तरी पश्चिमी भारत में जहाँ वर्षा कम होती है और मौसम साधारणतः शुष्क रहता है अधिकांशतः किया जाता है। कुछ रबी फसलें जैसे सेंजी, बरसीम, खेसारी मटर आदि भी हरी खाद के तौर पर प्रयोग कर सकते हैं।

बिना फली वाली फसलें

बेफली दार फसलें केवल कार्बनिक पदार्थ प्रदान करती है जो लाभदायक जीवाणुओं का प्रमुख भोजन है। इन फसलों से मिट्टी को नाइट्रोजन नहीं प्राप्त होती है इसलिए जिन मिट्टियों में नाइट्रोजन की प्रचुरता होती है उनमें ही बेफलीदार फसलें का हरी खाद के लिए प्रयोग में लाया जाता है। हमारे देश की मिट्टी में नाइट्रोजन का बहुत अभाव है। यहाँ साधारण मिट्टी में 0.03–0.07 प्रतिशत नाइट्रोजन एवं 0.06 प्रतिशत कार्बन पाया जाता है जबकि यूरोप एवं अमेरिका की मिट्टियों में 0.01–0.017 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा 3 प्रतिशत कार्बन पाया जाता है। अतः बेफलीदार फसलें हमारे देश में हरी खाद के लिए प्रयोग में नहीं लाई जाती है। इसके प्रयोग से नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि नहीं होती है जबकि अन्य पोषक तत्व तथा कार्बनिक पदार्थ प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं, जो दूसरे को लाभ पहुँचाते हैं। हरी खाद की फसलों द्वारा भूमि में नाइट्रोजन की प्रतिदर निम्नलिखित बातों का प्रभाव पड़ता है। हरी खाद के लिए प्रयुक्त, फसल की दशा एंव फसल को भूमि में जोतने का समय, क्योंकि जो फसल जितनी अधिक पत्तीयुक्त तथा फूलने–फलने वाली होगी उससे उतना ही अधिक जैविक पदार्थ प्राप्त होगा। फसल में फूल आने के समय जोतना सर्वोत्तम समय है।

हरी खाद देने का ढंग

हरी खाद से सर्वोत्तम लाभ प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इससे सम्बन्धित कार्यों का लाभ भलि–भांति होना चाहिए। क्योंकि इन्हीं बातों पर हरी खाद की सफलता एवं असफलता निर्भर करती है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कारकों का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

(1) मिट्टी

हल्की मिट्टी के लिए हरी खाद अच्छी होती है। भारी

मिट्टी जिसमें दरारें फटती है हरी खाद के लिए अच्छी नहीं समझी जाती है।

(2) बुवाई का समय

जलवायु की भिन्नता के कारण इस विषय में कोई निश्चित निर्णय नहीं दिया जा सकता है। फिर भी जहाँ तक सम्भव हो वर्षा आरम्भ होने के पश्चात् ही शीघ्र बुवाई कर देना सर्वोत्तम है। बिहार तथा उत्तरी भारत के राज्यों में, यदि सिंचाई के साधन उपलब्ध हो तो फसल को जून के आरम्भ में बुवाई करने से फसल अपने आप को अच्छी प्रकार स्थिर कर लेती है और भारी वर्षा से होने वाली हानियों सुरक्षित रहती है।

(3) हरी खाद को खेत में जोतकर दबाने का समय

हरी खाद वाली फसलों को उस समय जोतना सर्वोत्तम रहता है जब उसमें फूल आने को हो। इस अवस्था तक पहुँचने के लिए अधिकतर फसलों को बुआई से सात से आठ सप्ताह का समय लग जाता है। हरी खाद की उपयोगिता बहुत कुछ इसी बात पर निर्भर करती है। जब हरी खाद सबसे अधिक रसयुक्त हो तभी उसे जोतकर मिट्टी में मिलाना चाहिए क्योंकि ऐसी दशा में पौधों का विघटन शीघ्रता से होता है और विघटन से पोषक तत्व ऐसे रुप में रहते हैं कि आगामी फसलें उससे अधिक से अधिक लाभ उठा सकें। यदि हरी खाद को परिपक्व होने के लिए छोड़ दिया जाय तो वो मिट्टी के पोषक तत्व खींच लेती है और मिट्टी के पानी को भी सुखा देती है। इससे हरी खाद का विघटन को समय नहीं मिलता है और आगामी फसलों को पोषक तत्व और जल दोनों की कमी हो जाती है। धान के लिए तो 8–10 दिन पूर्व खेत में जोत डालना चाहिए और खेत में पानी डटा रहना चाहिए।

हरी खाद का विघटन

विघटन की क्रिया से फसल को मिट्टी में जोतकर दबा देने के पश्चात् आरम्भ होती है। इस क्रिया में अनेक विभिन्न प्रकार के जीवाणु सहायता करते हैं। हरे भाग में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों के विघटन के अतिरिक्त उसका प्रोटीन भाग अमोनीकरण और नाइट्रोजन द्वारा नाइट्रेट में परिवर्तित हो जाता है। जो आगामी फसलों के प्रयोग में आता है। विघटन की क्रिया सुचारु रुप से चलते रहने के लिए उचित नमी, वायु, तापक्रम, प्रकाश तथा फास्फोरस आदि भोजन की उपस्थित भूमि में अनिवार्य है। फास्फोरस जीवाणुओं की वृद्धि तथा उनकी क्रियाशीलता को बढ़ाने के लिए भोजन के रुप में अवश्य मिलना चाहिए। इसलिए हरी खाद की बुवाई के समय खेत में लगभग 50–60 किलोग्राम सुपर फास्फेट प्रति एकड़ डालना चाहिए। विघटन की शीघ्रता नमी की पर्याप्त मात्रा, हरे पदार्थों के समान तथा उपलब्ध अकार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति निर्भर करता है। यदि हरी खाद पलटने के 15–20 दिन के अन्दर वर्षा न हो तो खेत में सिंचाई कर देना चाहिए।

हरी खाद के लाभ

- पौधों में जीवांश पदार्थों की वृद्धि होती है।
- भूमि को नाइट्रोजन की प्राप्ति होती है।
- भूमि में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ती है।
- पौधों के भोजन तत्वों का भूमि में संरक्षण होता है।
- भूमि के धरातल का जल तथा वायु संरक्षण नहीं हो पाता है। विशेष प्रकार बलुई तथा ढालू भूमि के क्षारण को रोकने के लिए यह महत्वपूर्ण फसल है।
- भूमि में उपयोगी जीवाणुओं की वृद्धि होती है, क्योंकि जीवांश पदार्थ से अनेक मृदा अणु जीवों को भोजन उपलब्ध होता है और अधिक सक्रिय हो जाते हैं।
- भूमि की भौतिक जैविक तथा रसायनिक दशा में सुधार होता है तथा भूमि की संरचना, संगठन, मृदा ताप, मृदा जल–धारण क्षमता तथा वायु संचार में बहुत ही सुधार होता है। क्षारीय तथा अम्लीय मृदा में भी पर्याप्त सुधार होता है।
- खरपतवारों की दशा में पर्याप्त सुधार होता है।
- जिन स्थानों पर खेतों में अन्य खादों के पहुँचाने की सुविधा न हो उन खेतों में यह सरलतापूर्वक प्रयोग में लाई जा सकती है।
- रासायनिक खादों के प्रयोग से जो दोष उत्पन्न होते हैं यह उन्हें दूर करने में सहायक है।

हरी खाद प्रयोग करते समय सावधानियाँ

1. यदि सिंचाई का प्रबन्ध हो तो गर्मी में ही हरी खाद की

बुआई कर देनी चाहिए। यदि प्रबन्ध नहीं हो तो बरसात की पहली वर्षा होते ही हरी खाद फसल की बुवाई कर देनी चाहिये।

2. खेतों में प्रर्याप्त जल की उपलब्धता न हो अर्थात शुष्क क्षेत्र हो, वर्षा 20 इंच प्रति वर्ग से कम हो और सिंचाई के साधन उपलब्ध न हो, वहाँ हरी खाद विशेष लाभ नहीं मिलता है क्योंकि मिट्टी में उतनी नमी होना आवश्यक है जिससे कि हरी खाद सड़ कर अगली फसल को पोषक तत्व प्रदान कर सके।

3. हरी खाद तैयार हो जाने पर उसे खेतों में जोतकर अच्छी तरह मिला देना चाहिए और जब मिट्टी में पूरी अच्छी तरह से सड़ जाये तब ही अगली फसल की बुआई करनी चाहिए।

4. हरी खाद के लिए कोमल फसल का चुनाव करना चाहिए विशेषकर शुष्क क्षेत्रों में इस विषय में काफी सावधानी बरतनी चाहिये क्योंकि पानी की कमी के वजह से कड़े भागों को सड़ने में समस्या आती है। उससे सड़ने के लिए हरी खाद की फसल को छोटी अवस्था, पौधे कोमल ही रखना सर्वोत्तम है क्योंकि पौधों के भागों में इसकी मात्रा अधिक होती है जो सड़ने के लिए जल की उपलब्धता का कोई विशेष प्रभाव नहीं हो पाता।

5. दलहन वाली हरी खाद फसल को जड़ों के पास ही पत्तियों और शाखाओं को दबाने से विकरण की क्रिया समान रुप से होती है।

फलों की तुड़ाई के बाद आम के बागों की देखभाल

संजय सिरोही[1], ए. नागराजा[2] एवं सुरेश चंद राणा[3]
[1,2]भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली –110012
[3]भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, करनाल

आम के पौधों में पुराने सीजन की प्ररोहों पर पुष्पन व फलन होती है इसलिए आम के बागों में फलों की तुडाई के बाद देख–रेख पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इस समय पौधे अगले वर्ष की फसल के लिए अपने आप को तैयार करते हैं। उत्तर भारत में जुलाई महीने के अंतिम सप्ताह तक आम के फलों की तुडाई पूरी कर ली जाती है।

खरपतवारों का नियंत्रण

जुलाई के महीने में मानसून सक्रीय रहता है इस वजह से बागों में खरपतवार की बढवार तेजी से होती है। बागों को साफ रखने के लिए निराई गुड़ाई तथा जुताई करनी चाहिए। इससे खरपतवार तथा भूमिगत कीट नष्ट हो जाते है। जुताई अधिक गहरी ना करें इससे पौधों की जडों को नुकसान पहुच सकता है। रासायनिक विधि से बागों में खरपतवार नियंत्रण के लिए 5 – 6 मिली गलैफोसेट व 50 ग्राम यूरिया का प्रतिलीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करें। किसान भाई इस बात का विशेष ध्यान रखें की छिड़काव आम के पौधों पर न गिरे। खरपतवारनाशी छिड़कने से पहले छोटे पौधों को पोलिथीन की चादर से ढक देना चाहिए।

गैप फिलिंग

जिन स्थानों पर पौधे मर गये हैं वहाँ पर मई महीने में 1 x 1 x 1 मीटर आकर के गड्ढे खोद ले अगर मिट्टी उपजाऊ हो तो 60 x 60 x 60 सेमी. आकर के गड्ढे भी पर्याप्त रहते हैं। गड्ढों में 30–40 किग्रा. गोबर की खाद व 100 ग्रा.NPK (12:32:16) मिश्रण को मिट्टी के साथ अच्छी तरह मिला कर जून के अंत में भर दें। इसके बाद 2 मिली. क्लोरोपाईरिफास व 2 ग्राम बाविस्टीन प्रति लीटर पानी में मिला कर सिंचाई कर दें ताकि दीमक व फफूंदी जनित बीमारी न फैले।

खाद एवं उर्वरक

आम में खाद एवं उर्वरक देने के समय का पौधों में फलन व विकास से सीधा संबध है। फलों की तुडाई के तुरंत बाद नत्रजन व पोटाश की आधी मात्रा जुलाई महीने में व शेष आधी मात्रा अक्टूबर के महीने में पेड़ के चारों तरफ बनाये गये थालों में डालकर मिट्टी में मिला देनी चाहिए। खाद देना का यह उपयुक्त समय होता है। खाद की मात्रा पौधे की आयु के अनुसार ही डालें। पौंधा लगाने के एक वर्ष बाद प्रति पौधा 200 ग्राम यूरिया 300 ग्राम सिंगल सुपर फोसफेट 200 ग्राम पोटेशियम सल्फेट व 25 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद, दस साल की उम्र तक प्रतिवर्ष उम्र के गुणांक में नाइट्रोजनए पोटाश तथा फास्फोरस देनी चाहिए। दस वर्ष का पेड़ होने पर यह मात्रा 2 किग्रा यूरिया 3 किग्रा सिंगल सुपर फोसफेट 2 किग्रा पोटेशियम सल्फेट व 25 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद देनी चाहिए। दस साल बाद यह मात्रा स्थिर कर देनी चाहिए इसके बाद यहि मात्रा प्रति वर्ष दें। आम के पेड़ों पर फूल आने से पहले व फल बन जाने के बाद सूक्ष्म पोषक तत्व का 3–4 मिली. प्रतिलीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

सिंचाई

खाद डालने के बाद यदि बारिश ना हो तो सिंचाई करना अति आवश्यक होता है। आम के छोटे पौधों को गर्मी के मौसम में 4–5 दिन के बाद सिंचाई करें व सर्दियों में पाले से बचाने हेतु 8–10 दिन के अन्तराल से सिंचाई करें। अक्टूबर महीने के बाद मिट्टी में अधिक नमी होने से फूल कम पैदा होते है और वनस्पतिक वृद्धि ज्यादा इसलिए फल देने वाले पौधों में अक्टूबर से जनवरी तक सिंचाई नहीं करनी चाहिए।

कटाई–छटाई

पौधों की कटाई –छटाई का कार्य दिसंबर से जनवरी महीने में करना चाहिए। इस समय पौधे आराम की अवस्था में होते हैं और फफूदी जनित बीमारी भी कम फैलती है। रूट–स्टॉक से निकलने वाली सभी शाखाओं को काट देना चाहिए। ऐसी शाखायें जो जमीन के संपर्क में हो, रोगग्रस्त हो, सुखी हुई, अधिक घनी व एक दूसरे पर चढ़ी हो तो काट कर अलग कर देना चाहिए। पौधे के मुख्य तने पर जमीन से 100 सेंटीमीटर की ऊँचाई तक कोई भी शाखा नहीं निकलने देनी चाहिए। कटे हुए खुले भाग पर कॉपर सल्फेट व चूने का पेस्ट बना कर लेप कर देना चाहिए।

रोग और नियंत्रण

चूर्णिल आसिता

यह रोग बहुत तेजी से फैलता है। इस रोग से सबसे अधिक नुकसान फूल अवस्था पर होता है। फूल व पत्तियों पर सफेद रंग का पाउडर दिखाई देता है जिससे फूल खराब हो जाता है इसकी रोकथाम के लिये कॉपर ओक्सीक्लोराइड (Blitox 50) 3–4 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बना कर फूल खिलने से पहले व बाद में 15 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करें।

एंथ्रेकनोज

इस रोग का आक्रमण होने पर फूल एवं फल व नई शाखाओं पर गहरे काले रंग के चकते दिखाई देते हैं जो तेजी के साथ बढ़ते जाते हैं। संक्रमित भाग सूख कर गिर जाता है। इसके नियन्त्रण करने के लिय कार्बेन्डजीम (Bavistin) 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करें। पहला छिड़काव फूल आने से पहले और फल पकने तक 3–4 छिड़काव करें।

डाई बैक

इस रोग से ग्रसित पौधा ऊपर से नीच की तरफ सूखना शरू हो जाता है और धीरे–धीरे पौधा मर जाता है। रोगी शाखाओं की कटाई रोगी स्थान से 15–20 सेमी. नीचे से कर देनी चाहिए। कटे हुए भाग पर नीलेथोथे व चूने (Copper Sulphate + Lime, 50+50) का पेस्ट बना कर लेप कर दे।

गुच्छा रोग

इस रोग का संक्रमण छोटे व बड़े सभी पौधों में देखने को मिलता है। पौधों में फूल के स्थान पर गुच्छा सा बन जाता है और फल नहीं बनते जिससे उत्पादन व पौधों का विकास दोनों प्रभावित होते हैं। ऐसे गुच्छे जब भी दिखाई दें उनको काट कर मिट्टी के अन्दर दबा देना चाहिए।

भुनगा फुदका कीट

यह भूरे रंग का कीड़ा होता है जो आम के फूलों एवं नई पत्तियों से रस चूसता है इसकी रोकथाम के लिए क्लोरोपाईरीफोस 2 मिली. प्रतिलीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करें।

मीली बग

इस कीट का प्रकोप फरवरी से मई तक अधिक होता है। ये नई टहनियों व फूलों के डंठलों से चिपके रहते है और रस चूसते रहते हैं। इसकी सफेद रंग की मादा अप्रैल– मई में पौधों से उतर कर मिट्टी में अंडे देती है अंडे से बच्चे निकल कर जनवरी के पहले सप्ताह में पेड़ों पर चढ़ना शरू कर देते हैं। इसके नियंत्रण के लिए अक्टूबर व नवम्बर महीने में बाग की जुताई कर क्लोरोपईरीफास चूर्ण 200 ग्राम प्रति पेड़ तने के चारों ओर मिट्टी में मिला दें। दिसम्बर के आखरी सप्ताह में तने पर पोलीथीन की 25 सेमी चोडी पट्टी मिट्टी से 1–1.5 फुट की ऊचाई पर बांध दें व दोनों किनारों पर ग्रीस लगा दें। यदि कीट पेड़ पर चढ़ गए हो तो एमिडाक्लोरपिड 0.3 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर जनवरी माह में 2 छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर करना चाहिए।

तना छेदक

इस कीट की गिडार/सुंडी आम के बड़े पौधों में सुराख बना कर तने के अन्दर घुस जाती है और तने को खा कर खोखला कर देती है जिससे पौधा धीरे–धीरे सूखने लगता है। इसकी रोकथाम के लिये प्रभावित शाखाओं को कीड़े सहित काट कर अलग कर देना चाहिए और सुराखो में क्लोरोपाईरीफोस कीटनाशक डालकर गारे से बंद कर देना चाहिए। खुले भाग पर कॉपर सल्फेट व चूने का पेस्ट बना कर लेप कर देना चाहिए।

फल मक्खी

जब फल पकने वाले होते हैं तो यह मक्खी फल के अन्दर अंडे दे देती है जिससे लार्वा निकल कर गूदे को खाने लगते हैं और फल सड़कर जमीन पर गिर जाते हैं। इन सभी खराब फलों को जमीन के अन्दर दबा देना चाहिए। इसकी रोकथाम के लिये मिथाईलयूजीनाल ट्रैप का प्रयोग करें। ट्रैप मई के प्रथम सप्ताह में लटका दें तथा ट्रैप के लकड़ी के गुटके को 15 दिन बाद बदल देना चाहिए। मेलाथियान कीटनाशी 2 मिली. प्रति लीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव से फल मक्खी पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

पाले व ठंड से बचाव

आम के छोटे पौधों को पाले से बचाव हेतु 25 दिसम्बर से 30 जनवरी तक पराली या पोलीथीन चादर से ढ़क कर रखें। पूरब दिशा से पोलीथीन थोडा खोल कर रखें ताकि प्रातः काल का सूर्य का प्रकाश पौधों को मिल सके। छोटे पौधों में पाले से बचाव के लिए 7–8 के निश्चित अन्तराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए।

फलों का झड़ना

आम के फलों का छोटी अवस्था में ही पोधे से टूट कर गिर जाना एक बड़ी समस्या है। इसकी रोकथाम के लिए जब फल मटर के दाने के आकार के हो जाये तो एन.ए.ए.(Nepthalene Acetic Acid) का 40–50 पी.पी.एम. (40–50 मिलीग्राम प्रतिलीटर) का पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

उपरोक्त सभी बातों का ध्यान रख कर किसान भाई अपने बागों से अच्छी गुणवत्तायुक्त उत्पादन लम्बे समय तक प्राप्त कर सकते हैं।

स्टेविया के औषधीय महत्व

सुरेश यादव, दिनेश कुमार यादव एवं गणपत लौहार
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

परिचयः–

स्टेविया (***स्टेविया रेबुडियाना***) आमतौर पर मीठा पत्ता, चीनी पत्ता, शहद पत्ता या केवल स्टेविया के रूप में जाना जाता है। यह पौधा अपनी मीठी पत्तियों के लिए व्यापक रूप से उगाया जाता है। स्टेविया पौधा, एस्ट्रेसी कुल से संबंधित है। इसका उपयोग प्राकृतिक शर्करा के रूप में शर्करा के अन्य स्त्रोत के रूप में करते है। स्टेविया, रासयनिक शर्करा जैसे स्प्लेंडा, सेकेरीन एवं एस्पारटेम को तेजी से पृतिस्थापित कर रहा है। स्टेविया गठा की लगभग 240 प्रजातियां है। स्टेविया की पत्तियां सामान्य शर्करा से लगभग 30 गुणा मीठी है। (शुन्य कैलोरी के साथ)

स्टेविया की पत्तियों में दो मुख्य यौगिक स्टेवियोसाइड एवं रेबुडीयोसाइड पाए जाते हैं। कम कार्बोहाइड्रेट युक्त शर्करा की माँग बाजारों में बढती जा रही है। घरेलू स्तर के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्टेविया का अच्छा बाजार विकसित हो रहा है। यह मधुमेह रोगियों के लिए एक आशा की किरण है। क्योंकि यह शर्करा का प्राकृतिक स्त्रोत है, एवं मोटापे और उच्च रक्त शर्करा रोगी के ईलाज के लिए भी प्रयोग किया जाता है।

सदियों से दक्षिणी अमेरिकी देशों जैसे ब्राजील में स्टीविया पौधे की पत्तियों का इस्तेमाल प्राकृतिक स्वीटनर के तौर पर होता आ रहा है. आज स्टीविया पूरे विश्व में पाया जाता है और मीठे के प्राकृतिक विकल्प के तौर पर मशहूर है ये नेचुरल स्वीटनर स्टेविया रिबॉदियाना के पौधे से हासिल होता है इसमें मीठा प्राकृतिक रूप से पाया जाता है और ये साधारण चीनी से 200 गुणा अधिक मीठा होता है इसकी यह खासियत दो मिश्रणों की वजह से हैं पहला स्टेवियोसाइड और दूसरा रिबॉडियोसाइड

हालांकि स्टीविया में पोषक तत्व नहीं होते जिसका मतलब ये है ये आपकी डाइट में कैलोरी की मात्रा नहीं बढ़ाता है. जिसके चलते ये चीनी की जगह अच्छा विकल्प हो सकता है वर्तमान में जापान में किसी और देश की तुलना में सबसे अधिक स्टेविया की खपत होती है, स्वीटनर बाजार में स्टेविया 40% का योगदान करता है।

इसकी पत्तियों का उपयोग न केवल प्राकृतिक शर्करा के रूप में बल्कि ये अग्नाशय ग्रन्थि को भी जीवंत करने में मदद करता है। इसके अलावा स्टेविया में पौषक तत्व जैसे प्रोटिन, मैग्नीशयम, राइबोफ्लेविन, जस्ता, क्रोमियम, सेलेनियम, केल्शियम एवं फॉस्फोरस की भी पर्याप्त मात्रा होती है।

उपयोग :–

1. यह दाँत के पेस्ट (दाँत की देखभाल में सुधार) और च्यूइंग गम में प्रयोग किया जा सकता है।
2. यह विभिन्न उद्योगों में प्राकृतिक शर्करा के रूप में उपयोग किया जाता है।
3. यह खाद्य उत्पाद जैसे सॉस, अचार, आईसक्रिम, और केक इत्यादि में उपयोग किया जाता है।
4. गैर–किण्वन गुण होने के कारण इसका उपयोग कुछ फार्मास्यूटिकल सूत्रों में किया जाता है।
5. इसका उपयोग मधुमेह रोगीयों के लिए शर्करा के रूप में किया जाता है।
6. यह उच्च रक्तचाप को कम करता है।
7. यह शुद्ध रूप से कार्बनिक है एवं इसकी शुष्क पत्तियाँ 100ः कार्बनिक है और इसमें 0ः कैलोरी है।
8. स्टेविया को आहार पूरक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।
9. यह त्वचा की देखरेख एवं वजन नियंत्रण में भी सहायक है।

10. यह बच्चों द्वारा उपयोग के लिए पूरी तरह सुरक्षित है।

निष्कर्ष :–

स्टेविया की ताजा पत्तियों में अच्छा पेय स्वाद होता है। यह सामान्य शर्करा (सुक्रोज) को प्रतिस्थापित करता है, यही गुण स्टेविया को अद्‌भुत पौधा बनाता है। स्टेविया के कई अलग–अलग उपयोग है जैसे शीतल पेय, पेस्ट्री, अचार, तंबाकू उत्पाद, जैम, च्यूइंग गम, शर्बत में टेबल शर्करा के रूप में होता है।

स्टेविया के उपयोग से 0% कैलोरी सेवन होता है तथा यह रक्त ग्लूकोज स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता है इसलिए मधुमेह रोगियों द्वारा इसका स्वतंत्र रूप से सेवन किया जा सकता है।

सब्जियों के प्रमुख रोग एवं प्रबन्धन

[1]अर्चना उदय सिंह [2]रमेश चन्द एवं [3]सुभाष चन्द
[1]सूत्रकृमि विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012
[2] सहायक प्राध्यापक, सूत्रकृमि विज्ञान विभाग, [3]सहायक प्राध्यापक, पादप रोग विज्ञान विभाग,
नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ0प्र0)

1. बैगन

1.फल विगलन तथा फोमोप्सिस झुलसा

यह फफूँदी पौधे के प्रत्येक भाग को प्रभावित करती है। रोगी पौधे की पत्तियों पर भूरे रंग के गोल धब्बे बनते हैं जो बाद में अनियमित आकार के हो जाते हैं। रोग का उग्र रुप होने पर यह धब्बे फूलों पर दिखाई पड़ते हैं। फलों पर पीले गड्ढेदार धब्बे बनते हैं, जो अधिकांश भाग में फैल जाता है। प्रभावित फल सड़ने लगते हैं। रोगी पुष्प काला होकर सिकुड़ जाता है। रोग की उग्र अवस्था में सम्पूर्ण फसल नष्ट हो जाती है।

प्रबन्धन

- ✓ बीज को 50^0 से0ग्रे0 गर्म पानी में 30 मिनट तक डुबोने के बाद छाया में सुखा कर बोयें।
- ✓ दो ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किग्रा. बीज की दर से बीजोपचार कर बुवाई करें।
- ✓ तीन से चार साल का फसल चक्र अपनायें।
- ✓ रोपाई से पूर्व पौध को 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम के घोल में डूबोकर रोपित करें।
- ✓ पौधों पर रोग का लक्षण दिखते ही एक किग्रा0 कार्बेन्डाजिम प्रति हेक्टेयर की दर से 1000 लीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करें।

2. पौध–गलन रोग

इस रोग मे बीज अंकुरित होते ही पौधे संक्रमित हो जाते हैं। इस अवस्था में अंकुर भूमि से बाहर नहीं निकलता। कभी–कभी तो पूरा बीज भूमि में ही सड़ जाता है व जो बीज अंकुरित होता है उसका निचला हिस्सा जो भूमि की सतह से लगा रहता है सड़ जाता है।

प्रबन्धन

- ✓ बीज को बुआई से पूर्व 2 ग्राम कैप्टान या थीरम या कार्बेन्डाजिम प्रति किग्रा0 की दर से शेधित करें, तथा 2 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से भूमि शोधन करें।
- ✓ खड़ी फसल में 2 किग्रा0 मैंकोजेब या जिनेब प्रति हेक्टेयर की दर से 1000 ली0 पानी में घोल कर आवश्यकतानुसार 10 से 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करते रहना चाहिए।

3. गुच्छेदार पत्तियों की बीमारी

यह *फाइटोप्लाजमा* जनित रोग है जो फुदका कीट द्वारा फैलता है। इससे प्रभावित पौधों की पत्तियां छोटी व गुच्छे के रूप में हो जाती हैं तथा पौधा बौना रह जाता है। प्रभावित पौधा झाड़ीनुमा दिखाई देता है जिसमें फूल तथा फल नहीं लगते हैं।

प्रबन्धन

- ✓ रोग ग्रस्त पौधे को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- ✓ फुदका कीट की रोकथाम के लिए एक लीटर मिथाइल–ओ–डेमीटान 25 ई0सी0 प्रति हेक्टेयर की दर से 800 ली0 पानी में घोल कर फल लगने से पहले 10–15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए।

2. अरवी

1.झुलसा

लक्षणः रोग के लक्षण वर्षा ऋतु में जब तापमान अधिक तथा वातावरण में नमी भी अधिक होती है तब वर्षा प्रारम्भ होते ही पत्तियों पर भूरे धब्बे पड़ने लगते हैं। फलस्वरूप रोग की उग्रता के कारण पत्तियां एंव डंठल गलने लगते हैं तथा सम्पूर्ण पौधा गल कर गिर जाता है।

प्रबन्धनः इस रोग से बचाव के लिए खड़ी फसल में मैंकोजेब 2 किग्रा0 को 1000 लीटर पानी मे घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें तथा साथ मे स्टीकर जैसे सैण्डेविट ट्रीटान मिला लेना चाहिए।

2.फाइटाफ्थोरा झुलसा

यह अरवी का प्रमुख रोग है। इसमें पत्तियों पर भूरे रंग के जलीय धब्बे बनते हैं जो पत्तियों को झुलसा देते हैं। कभी कभी पत्तियां किनारे की तरफ से भी झुलसने लगती हैं। इस रोग की अधिकता होने पर कन्द भी प्रभावित होते हैं। बदली का मौसम एंव वातावरण में अधिक नमी होने पर रोग उग्र रूप धारण कर लेता है।

प्रबन्धनः रोग के लक्षण दिखाई पड़ते ही मैंकोजेब इण्डोफिल एम–45 की 2.5 किग्रा0 अथवा रीडोमिल एम0 जेड0 2.5 किग्रा0 को 800 लीटर पानी में घोलकर 10–15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

3.गोभी वर्गीय सब्जियॉ

1. काला विगलन रोग

रोग ग्रसित पौधों की पत्तियों पर अंग्रेजी के वी आकार के नमी युक्त हल्के धब्बे बनते हैं जो बाद में भूरे तथा कुछ समय बाद काले होकर मुरझा जाते हैं। रोग की उग्र अवस्था में पत्ती तथा तना के संवहन उत्तक नष्ट हो जाते

हैं जिससे पूरी पत्ती पीली होकर मुरझा कर गिर जाती है साथ ही साथ पौधों के तने भी रोग द्वारा संक्रमित होते हैं तथा उन पर काली धारियां नाड़ियों के समीप दिखायी पड़ती हैं। वर्षा होने पर उनमें सड़न एवं बदबू आने लगती है।

प्रबन्धन

- ✓ बोने से पहले बीज को आधे घण्टे तक स्ट्रेप्टोसाइक्लीन या एग्रीमाइसिन 100 मि0 ग्रा0 1 लीटर पानी में घोलकर उपचारित करें।
- ✓ पौधों के अवशेषों को एकत्र करके जला दें अथवा मिट्टी द्वारा दबा देना चाहिए।
- ✓ दो से तीन वर्ष का फसल चक्र अपनाना चाहिए।

2. पत्ती का धब्बा रोग

पत्तियों पर गोल आकार के गहरे भूरे रंग के सकेन्द्रीय धब्बे बनते हैं जो बाद में एक दूसरे से मिलकर विक्षत चित्ती रुप ले लेते हैं। ये धब्बे प्रायः कतारों में ही बनते हैं तथा रोग की उग्र अवस्था में ये तनों पर भी बन जाते हैं।

प्रबन्धन

- ✓ बीज को 3 ग्राम थीरम या कैप्टान प्रति किग्रा0 बीज की दर से उपचारित करके बोयें।
- ✓ पत्ती के अवशेषों को जला दें या मिट्टी में दबा दें।
- ✓ खड़ी फसल में कॉपर आक्सीक्लोराइड 3 किग्रा0 अथवा मैंकोजेब 2 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर की दर से 1000 लीटर पानी में घोलकर कम से कम दो छिड़काव करें। रोग की उग्रता को ध्यान में रखते हुए एक छिड़काव रोपाई से 20 दिन बाद अवश्य कर देना चाहिए।

4.भिन्डी

1. पीत शिरा मोजैक

यह विषाणु जनित रोग है। इसमें सर्वप्रथम पत्तियों की शिरायें एंव शिरिकायें पीली होकर मोटी हो जाती हैं और स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं। बाद में पत्तियां भी पीली पड़ने लगती हैं। रोग की उग्र अवस्था में तने और फलों का रंग भी पीला पड़ जाता है। यह रोग सफेद मक्खी द्वारा रोग ग्रसित पौधे से स्वस्थ पौधों में फैलता है व रोग के शुरूआती अवस्था में आने पर पौधा एंव फलियां दोनो छोटे रह जाते हैं।

प्रबन्धन

- ✓ रोग रोधी किस्मों को लगाइए जैसे परभनी क्रान्ति
- ✓ मेटासिस्टाक्स या नुवाक्रान 1.5 मिली. प्रति लीटर पानी में घोलकर 15 दिनों के अन्तराल पर दो से तीन छिड़काव करें।

2. काला धब्बा रोग

यह रोग बरसात की फसल में सितम्बर के अन्तिम

सप्ताह से शुरू होता है एवं कम तापमान व अधिक आर्द्रता के साथ बढ़ता है। इसमें पत्तियों पर काले धब्बे बनते हैं और रोग की उग्र अवस्था में पूरी पत्ती काली पड़ जाती है।

प्रबन्धनः इस रोग के नियंत्रण के लिए रोग का लक्षण दिखते ही टापसिन एम या कार्बेन्डाजिम के 1 ग्राम मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोल कर 10 दिन के अन्तर पर 3 बार छिड़काव करें।

5.परवल

1.गलन रोग

यह एक कवक जनित रोग है जिसमें कवक का प्रकोप अविकसित फलों पर अधिक होता है जिसके कारण पूरा फल सड़कर गिर जाता है तथा काफी नुकसान होता है।

प्रबन्धनः इस से निजात पाने के लिए कॉपर आक्सीक्लोराइड 50 डब्लू. पी. 2.5 किग्रा. 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने से लाभ मिलता है।

2.खर्रा रोग

इस रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियों तथा फलों की सतह पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है। जिसके परिणाम स्वरूप पत्तियां पीली पड़ कर गिर जाती हैं।

प्रबन्धनः रोग नियंत्रण के लिए डाइनोकेप 48 एल0सी0 500 मिली को 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

6.आलू

1. अगेती झुलसा

यह एक फफूँद जनित रोग है इसमें पत्तियों के ऊपर छोटे हल्के भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। फफूँद सबसे पहले नीचे की पुरानी पत्तियों को संक्रमित करता है बाद में ऊपर की पत्तियों को भी संक्रमित करता है। पुराने धब्बे छल्लेदार दिखायी पड़तें हैं। रोग की उग्र अवस्था मे यह धब्बे आपस में मिलकर पूरी पत्ती को झुलसा देते हैं। आलू की अगेती फसल में इस रोग की सम्भावना सबसे अधिक रहती हैं।

प्रबन्धनः इसकी रोकथाम के लिए मैकोजेब 75 डब्ल्यू0 पी0 2–2.5 किग्रो प्रति हेक्टेयर अथवा कॉपर आक्सीक्लोराइड 50 डब्ल्यू पी0 की 3 किग्रो प्रति हेक्टेयर के दर से 800–1000 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें आवश्यकता पड़ने पर 15 दिनों के अन्तराल पर दूसरा एवं तीसरा छिड़काव करें।

2. पछेती झुलसा

यह एक भयानक रोग है जो फफूँद द्वारा होता है। इस रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियॉ किनारों व सिरे से झुलसना प्रारम्भ होती हैं जिसके परिणाम स्वरूप बाद में पूरा पौधा झुलस जाता है और पत्तियों पर भूरे रंग के जलीय धब्बे बनते हैं जो अन्ततः पत्ती को झुलसा देता है। रोग की उग्र अवस्था होने पर तने पर भी भूरे व काले धब्बे

दिखायी देते हैं जिससे कन्द भी प्रभावित होते हैं। बदली के मौसम तथा वातावरण में नमी होने पर यह रोग उग्र रूप धारण कर लेता है तथा दो–तीन दिन में पूरी पत्तियाँ झुलस जाती हैं व बाद में पत्ती, तना एवं आलू सड़ने लगते हैं।

प्रबन्धन

- ✓ इण्डोफिल एम–45 की 2–2.5 किग्रा0 मात्रा को 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से पहला छिड़काव दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में करें। दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह से जनवरी माह तक हल्की बारिश या बदली होने पर कवकनाशी का प्रत्येक 10 से 15 दिन के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार 3 छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव इस प्रकार करना चाहिए कि कवकनाशी पत्तियों की दोनो सतहों पर समान रुप से फैल जाये।
- ✓ रोग ग्रसित कन्दों की बुवाई न करें। सड़े, गले, कटे आलू को अलग कर लें।
- ✓ रोग की उग्र अवस्था में रिडोमिल एम–जेड 2.5 किग्रा0 को 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

3. काली खुरन्ड

इस रोग से ग्रसित कन्दो के ऊपर काली खुरदरी परत जम जाती है। सबसे पहले कन्दो के ऊपर लाल भूरे धब्बे वाली आकृति बनती है जो सूख कर खुरदरी प्रतीत होती है।

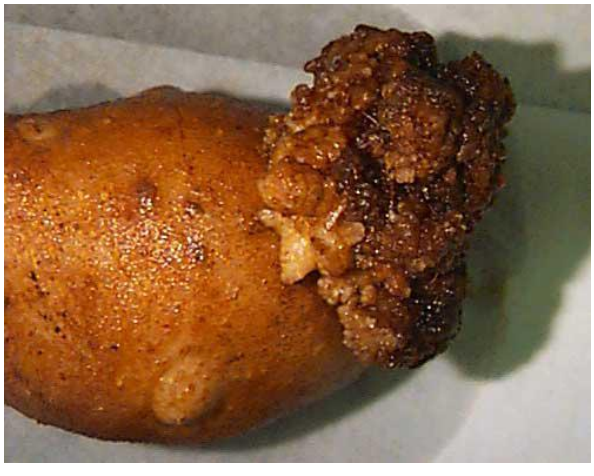

प्रबन्धन

- ✓ बुवाई से पहले आलू को बोरिक अम्ल में 30 ग्राम प्रति लीटर की दर से पानी में घोल बनाकर 30 मिनट तक डुबोयें और इसके बाद छाया में सूखा कर खेत में बुवाई करें ऐसा करने से काफी हद तक इस रोग से निजात मिल जाती है।
- ✓ प्रभावित कन्दों का उपयोग बीज के लिए न करें।
- ✓ जिस खेत में यह रोग लगता हो उसमें कम से कम तीन से चार वर्ष का फसल चक्र अपनायें।

4. शकाणु मृदुगलन

शकाणु मृदुगलन से प्रभावित पौधों की जड़ तथा तना भूमि स्तर पर जलीय, चिपचिपे धब्बे युक्त होकर सड़ जाते हैं। कन्द में सड़न के कारण झाग एवं गन्ध आती है। इसका प्रकोप खेत से भण्डार ग्रह तक बना रहता है।

प्रबन्धन

इस रोग से बचने के लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 100 मिग्रा0 प्रति ली0 पानी में घोल बनाकर 30 मिनट तक कन्दो को डुबोकर उपचारित करें तथा खड़ी फसल पर ट्राइडेमेफान 0.05 प्रतिशत तथा एग्रीमाइसिन के 100 मिग्रा0 प्रति लीटर पानी में घोलकर 10 दिन के अन्तर पर बारी–बारी से छिड़काव करने से इस रोग से बचाव किया जा सकता है।

5. विषाणु रोग

इस रोग से प्रभावित पौधों की पत्तियां मुड़ जाती है तथा मोटी एंव कड़ी हो जाती हैं। पौधों की बढ़वार रुक जाती है अर्थात पौधे बौने रह जाते हैं। मुख्य रुप से यह बीमारी माहू कीट से फैलती है।

प्रबन्धन

- ✓ विषाणु रहित स्वस्थ आलू की बुआई करें।
- ✓ माहू कीट के नियंत्रण के लिए फोरेट 10 जी 10 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय या फसल पर मिट्टी चढ़ाते समय खेत में डालें।
- ✓ इसके अलावा एक छिड़काव मेंटासिस्टाक्स 1.5 ली को 1000 ली पानी में घोलकर एक हेक्टेयर में छिड़काव करें।

6.गोल्डन सिस्ट रोग

गोल्डन सिस्ट सूत्रकृमि रोग को कूहन द्वारा वर्ष 1914 मे जर्मनी से खोजा गया। इस सूत्रकृमि की मादायें सुनहरे तथा सफेद रंग की होती हैं। इसीलिये इसे गोल्डन सिस्ट वाला सूत्रकृमि भी कहते हैं। रोग एक जगह से दूसरी जगह इससे प्रभावित फसल के द्वारा ही पहुंचता है।

रोग का फैलाव : यह ठन्डी जलवायु में पाया जाता है। यह यूरोप, दक्षिण अमेरिका, उत्तरी अमेरिका, रूस, दक्षिण अफ्रीका तथा भारत में प्रमुख रूप से पाया जाता है। भारत में यह रोग मुख्य रूप से 4000 हेक्टेयर क्षेत्र मे फैले नीलगिरी, पालनी तथा कोडाइकेनाल की पहाड़ियों में पाया जाता है। जो कि तमिलनाडु व केरल का बार्डर क्षेत्र है।

पोषक फसलें: यह सूत्रकृमि मुख्य रूप से आलू की फसल को ही प्रभावित करता है। लेकिन आलू की फसल न मिलने पर यह सोलेनेसी परिवार की अन्य फसलों जैसे–टमाटर, बैंगन व कुछ खरपतवारों पर भी अपना जीवन चक्र पूरा कर लेते हैं।

जीवन चक्र: एक सिस्ट में करीब 200–500 अण्डे भरे रहते हैं जो कि कई वर्षों तक जीवित अवस्था में बने रहते हैं। फसल उपयुक्त जलवायु व भूमि में नमी पाकर ये सूत्रकृमि सिस्ट से बाहर निकल कर फसल को रोगग्रसित करते हैं। द्वितीय अवस्था का दिम्बक जड़ में घुस कर भोजन ग्रहण करता है। अपनी सभी अवस्थाओं को प्राप्त करता हुआ 5–7 सप्ताह मे एक वयस्क नर या मादा में बदल जाता है जो कि सफेद या सुनहरे रंग के होते हैं और आलू की जड़ों पर चिपके रहते हैं।

रोग के लक्षण: सूत्रकृमि के सिस्ट मिट्टी में पहुंचने पर कई वर्षों तक पड़े रहते हैं लेकिन जब आलू की फसल उगायी जाती है तो दिम्बक सक्रिय होकर जड़ में प्रवेश कर जाता है। फसल में निम्न लक्षण दिखाई देते हैं।

- फसल असमान रूप (कहीं–कहीं) से कमजोर दिखाई देती हैं।
- कमजोर फसल की पत्तियॉ पीली व छोटी आकार की दिखाईं देती हैं।
- पौधे दिन के वक्त मुरझा जाते हैं।
- जडों पर सफेद या सुनहरे रंग के सिस्ट दिखाई देते हैं।

रोग के उपचार :

- पत्ता गोभी, मूली, गाजर, सेम, स्ट्रावेरी व सलजम आदि फसल चक्र के रूप में उगायें।
- आलू की कुफरी स्वर्ण नामक किस्म को रोगरोधी किस्म के रूप में उगायें।
- इस सूत्रकृमि से रोगग्रसित फसल के किसी भी भाग को अन्य क्षेत्रों में न जाने दें।
- यदि बहुत जरूरी हो तो खेत में फैनस्ल्फोथियान 30 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से अगली वर्ष प्रयोग करें और भूमि मे मिला दें।
- खेत में किसी भी प्रकार का खरपतवार न उगने दें।

7. कद्दू वर्गीय सब्जियां

1. बुकनी रोग

यह मुख्यतः लौकी की फसल पर लगने वाला रोग है। सर्वप्रथम इसके लक्षण पत्तियों और तनों की सतह पर सफेद चूर्ण या धुंधले धब्बो के रुप में दिखायी पड़ते हैं।

कुछ दिन के बाद ये धब्बे चूर्ण युक्त हो जाते हैं। रोग की उग्र अवस्था में यह चूर्ण फैल कर पूरे पौधे को ढक लेता है और पौधे की पत्तियां समय से पहले गिर जाती हैं। इसके कारण फलों का आकार छोटा रह जाता है।

प्रबन्धन

- ✓ खेत की स्वच्छता इस रोग की रोकथाम का प्रमुख उपाय है। रोग ग्रसित फसल के अवशेषो को इकट्ठा कर खेत में जला दें या जमीन में दवा देना चाहिए।
- ✓ अवरोधी किस्मों की बुवाई करनी चाहिए।
- ✓ फफूँद नाशक दवा जैसे कैलिक्सीन 0.5 मि0ली0 दवा एक लीटर पानी में घोल बनाकर सात दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त सल्फेक्स (घुलनशील गंधक) को 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से भी इस रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

2. मृदुरोमिल असिता

इस रोग को तुलसिता रोग भी कहते है। यह इस वर्ग का प्रमुख रोग है जो प्रायः खीरा तोरी लौकी और करेंला में भी लगता है। इस रोग के मुख्य लक्षण पत्तियों पर कोण ीय धब्बे बनते है। ये पत्ती के ऊपरी सतह पर पीले रंग के होते है तथा निचली सतह पर ठीक धब्बो के नीचे फॅफुद की सफेद वृद्धि दिखायी पड़ती है। रोग की उग्र अवस्था में पौधे की सारी पत्तियां सूखकर गिर जाती है।

प्रबन्धन

- ✓ रोग रोधी प्रजातियों का प्रयोग करें।
- ✓ रोग से बचाव के लिए बीजो को एप्रोन नामक कवक नाशी से 2 ग्राम दवा प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचारित करके बोयें।
- ✓ रिडोमिल एम.जेड. दवा का 2 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से 800–1000 लीटर पानी में घोल बनाकर कम से कम दो छिड़काव 10–15 दिनो के अन्तर पर करना चाहिए।
- ✓ पूरी तरह रोग ग्रस्त पौधों को निकालकर दबा देना चाहिए।

4. जड़–विलगन

यह रोग आम तौर पर खरबूज तथा खीरा में पाया जाता है। बीजपत्र तथा पत्तियां हल्के पीले होकर मरने लगते है। रोग ज्यादा होने पर बीजपत्र सड़ने लगते है। रोग ग्रसित पत्तियां एंव पूरा पौधा मुरझा जाता है। नया तना अन्दर की तरफ भूरा होकर सड़ जाता है तथा पौधे की जड़ भी सूख जाती है जिसके कारण पौधा धीरे धीरे सूख जाता है।

प्रबन्धन

- ✓ प्रमाणित बीजो की बुवाई करनी चाहिए।
- ✓ रोग ग्रसित पौधे को खेत से उखाड़कर मिट्टी मे दबा दे।
- ✓ बीज को वेबिस्टीन या बेनलेट 2 ग्राम दवा प्रति किलो ग्राम बीज की दर से बोने से पहले उपचारित करें।
- ✓ धान या मक्का के साथ लम्बी अवधि का फसल चक्र अपनावे।

5. फल विगलन

यह रोग जहाँ पर कद्दू वर्गीय फसल होती है वहाँ पाया जाता है। मुख्य रुप से करेला घीया तोरी, परवल, चिचिण्डा, एवं लौकी के फूलों पर फफूँद की अत्यधिक वृद्धि हो जाने के कारण फल सड़ने लगते है। जमीन पर पड़े फलों का छिलका नरम, गहरे हरे रंग का हो जाता है। आर्द्र वायुमण डल में सड़े हुए भाग पर रूई के समान घने कवक जाल विकसित हो जाते है। भण्डारण के समय भी फलों में यह रोग फैलता है।

प्रबन्धन

- ✓ खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था रखें।
- ✓ फलों को भूमि के सम्पर्क से बचाने का प्रयास करें।
- ✓ भण्डारण एंव परिवहन के समय फलों को चोट लगने से बचायें तथा हवादार खुली जगह पर रखें।

6. रूक्ष रोग

पौधों की पत्तियों पर भूरे अथवा हल्के रंग के धब्बे बनते हैं। रोग ग्रसित पत्तियां सिकुड़कर सूख जाती हैं। रोग ज्यादा होने पर ये धब्बे फलों तथा तनों पर भी दिखाई देते हैं।

प्रबन्धन

- ✓ रोग रोधी किस्मों को ही लगायें।
- ✓ बीजो को बाविस्टीन 2.5 ग्राम दवा प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोयें।
- ✓ खेत में रोग के लक्षण शुरू होने पर इण्डोफिल एम–45 का 3 ग्राम प्रति लीटर पानी अथवा बाविस्टीन 1 ग्राम प्रति लीटर का घोल बनाकर 10–15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

7. मोजैक

यह वीषाणु जनित रोग है इस रोग से ग्रसित पौधों की नई पत्तियां पीली व छोटी हो जाती हैं। ग्रसित पौधा बौना रह जाता है। पुष्प गुच्छों में दिखाई पड़ते हैं अधिकांश फूल झड़ जाते हैं तथा फल कम बनते हैं।

प्रबन्धन

- ✓ रोग ग्रसित पौधे को उखाड़कर मिट्टी में दबा देना चाहिए।
- ✓ कद्दू वर्गीय खरपतवारों को खेत और उसके आस पास से नष्ट कर देना चाहिए।
- ✓ रोग वाहक कीटों से बचाव के लिए मैलाथियान 50 ई.सी. एक मिली प्रति लीटर पानी में घोल बना कर 10 दिन के अन्तराल पर 2–3 छिड़काव अवश्य करें।

सूक्ष्मजीवों के माध्यम से धान की पुआल से बायोएथेनॉल और कम्पोस्ट का उत्पादन

ढीनू यादव*, विक्रम सिंह एवं लीलावती
*सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार (हरियाणा)

भारत में उगाई जाने वाली खाद्यान फसलों में धान प्रमुख खाद्य फसल है और वैश्विक उत्पादन की दृष्टि से भारत की हिस्सेदारी 20 प्रतिशत से अधिक है। एक तरफ जहां धान का क्षेत्र एवं उत्पादन इतना अधिक है वही दूसरी तरफ धान की फसल तैयार होने के साथ ही खेतों में पराली जलाने के कारण होने वाले प्रदूषण की चिंता भी बढ़ने लगी है। जैसा कि हम जानते है कि पिछले कुछ वर्षों से धान की पुआल एक बहुत बड़ी समस्या बनती जा रही है। खास तौर पर जब से संयुक्त यांत्रिक हारवेस्टर का उपयोग करके धान की कटाई की जा रही है और बड़ी मात्रा में पुआल और फसल अवशेषो को खेत में छोड़ दिया जाता है, जिसे किसानों द्वारा जलाया जाता है। धान के पुआल को जलाने से एक बहुत बड़ी आर्थिक हानि भी होती है क्योंकि इसमें लगभग 51.76 प्रतिशत आर्गेनिक कार्बन, 0.65 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.20 प्रतिशत फस्फोरस और 0.30 प्रतिशत पोटाश होता है। इसे जलाने से खेत के मुख्य पौषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। दूसरी तरफ इसको जलाने से बहुत ही जहरीली गैसें जैसे कार्बनडाइऑक्साइड, नाइट्सऑक्साइड, कार्बनमोनोऑक्साइड, बैंजीन, मीथेन और एरोसोल निकती है। ये गैसें हवा को प्रदूषित कर देती है और पूरा वातावरण दूषित हो जाता है। इन जहरीली गैसों के कारण जीवों में तरह–तरह की बीमारी जैसे त्वचा, आंखों की बीमारी, सांस–फेफड़े की बीमारियां और कैंसर जैसी खतरनाक बीमारियां फैलती हैं। हर साल सर्दियों की शुरुआत में पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में लाखों टन पराली जला दी जाती है। नासा के नेतृत्व में किए गए एक अध्ययन के मुताबिक देश के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों में फसल अवशेष जलाने के कारण धुएं और धुंध का गुबार महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, तेलंगाना, छत्तीसगढ़ और ओडिशा तक फैल रहा है। 2015 में एनजीटी ने पुआल जलाने पर प्रतिबंध लगा दिया था क्योंकि इससे निकलने वाले धुएं से लोगों के स्वास्थ्य और पर्यावरण पर बुरा असर पड़ रहा था। पुआल जलाने से होने वाले खतरे को देखते हुए वैज्ञानिकों ने आगाह किया है कि यदि समय रहते इस समस्या से निपटने के उपाय न किए गए तो पर्यावरण, स्वास्थ्य और जमीन की उर्वरता पर इसका विपरीत असर पड़ सकता है। विशेषज्ञों ने कई ऐसे विकल्प सुझाए हैं, जो इस समस्या से निपटने में मददगार हो सकते हैं। जिनमें से एक सबसे अच्छा विकल्प एंजाइम, एथेनोल और जैविक–अम्ल जैसे महत्वपूर्ण मूल्य वर्धित व्यावसायिक उत्पादों का उत्पादन करना है। जैव ईंधन के सही विकल्प के लिए धान कि पुआल को एंजाइमी हाइड्रोलिसिस (किण्वक जल–अपघटन) के बाद इथेनॉल उत्पादन के लिए प्री–ट्रीटमेंट प्रक्रिया के लिए लिग्नोसेल्यूलोसिक अपशिष्ट बहुत अच्छा माना जाता है।

हालांकि, सड़ने के बाद धान का पुआल पौधों को मिलने वाले पौषक तत्वों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है लेकिन प्राकृतिक रूप से सड़ने की इस क्रिया में बहुत अधिक समय लगता है जिसका सबसे बड़ा कारण धान के पुआल में उपस्थित सेल्यूलोज और लिग्निन जैसे तत्व है। जीवाणु इन उपरोक्त जटिल तत्वों को आसानी से टूटने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भूमि में असंख्य सूक्ष्मजीव रहते हैं जो फसल या पौधों की लिग्नोसैल्यूलोज सामाग्री को कमजोर करने में सक्षम हैं। भूमि में पाई जाने वाली फफूंद की प्रजातियाँ मुख्य रूप से सेल्यूलोज और लिग्निन को तोड़ने में मदद करती हैं जो सरल सर्करा और फिनोलिक अम्ल के रूप में बदल जाती हैं। धान के पुआल से इथेनॉल और खाद का उत्पादन करने के लिए सूक्ष्मजीवों का उपयोग किया जा सकता है। जो इस समस्या के

समाधान का एक बहुत अच्छा विकल्प हो सकता है। जैसे जैसे जीवाश्म ईंधन की कमी, ग्लोबल वार्मिंग, और प्राकृतिक संसाधनों की कमी से चिंता बढ़ गई है। आज पूरे विश्व का ध्यान लिग्नोसेल्यफलोंसिक बायोमास से उत्पादित बायोएथेनॉल को तेल ईंधन के वैकल्पिक ऊर्जा के रूप में प्रयोग करने की तरफ गया है। बायोइथेनॉल के उत्पादन में आने वाले कच्चे माल का एक बहुत बड़ा स्त्रोत धान का पुआल है जिसमें प्रचुर मात्रा में लिग्नोसेलफलोंसिक बायोमास पाया जाता है।

इथेनॉलः

पिछली सदी में जैसे–जैसे दुनिया की आबादी बढ़ी और कई देश औद्योगिक हो गए हैं वैसे ही ऊर्जा की खपत में जबरदस्त वृद्धि हुई है। ऊर्जा की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए एकमात्र कच्चा तेल ही प्रमुख संसाधन रहा है। तेल के जलने से उत्पन्न धुआँ से हानिकारक गैसों का उत्सर्जन होता है। जीवाश्म ऊर्जा पर एकमात्र निर्भरता होने से न केवल वित्तीय बोझ बढ़ा है, बल्कि पर्यावरण प्रदूषण भी बढ़ गया है। इसलिए वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों की खोज करना बहुत जरूरी हो गया है। एक ईंधन के रूप में बायोइथेनॉल (बायोमास से इथेनॉल) अत्यधिक फायदेमंद हैं और इसे एक आशाजनक नवीकरणीय ईंधन के रूप में माना जाता है। अन्य बायोमास संसाधनों से उत्पादित सेलफलोंसिक इथेनॉल और इथेनॉल में ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में लगभग 86% कम करने की क्षमता है। इथेनॉल में गैसोलीन की तुलना में अधिक दबाव प्रतिरोध करने की क्षमता है, जिससे इंजन उच्च दबाव एवं बेहतर प्रदर्शन के साथ चलता है।

धान के पुआल में लगभग 25–45% सेल्यूलोज, 20–30%हेमीसेलफलोंज (लिग्नोसेलफलोंस बायोमास का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण जैविक अवशेष) और 10–15% लिग्निन (तीसरा मुख्य जैविक अवशेष) शामिल है। लिग्निन को हटाने के लिए, सेल्यूलोज क्रिस्टल को कम करना पड़ता है जिसके लिए अवशेष की सरंध्रता को बढ़ाएं और हाइड्रोलिसिस के लिए सेल्यूलोज को वांछनीय बनाने के लिए उसमें किण्वन हो प्रीट्रीटमेंट प्रक्रिया आवश्यक है। इथेनॉल को तीन चरणों का उपयोग करके उत्पादित किया जाता हैः – प्रीट्रीटमेंट, हाइड्रोलिसिस और किण्वन। धान के पुआल की जैविक संरचना के लिए और लिग्निन को विघटित करने के लिए कवक (वर्गः बेसिडिओमाइसीट्स) का उपयोग किया जाता है। इथेनॉल में प्रीट्रीट लिग्नोकेलफलोंलिटिक अवशेषों का रूपांतरण (पूर्व रूपांतरण एवं किण्वन) अलग से किया जा सकता है यानी अलग–अलग हाइड्रोलिसिस और किण्वन और एक साथ सत्यापन और किण्वन। अलग–अलग हाइड्रोलिसिस और किण्वन प्रक्रिया में, प्रीट्रीट लिग्नोकेलफलोंलिटिक अवशेष सेल्यफलोंज द्वारा पहले मोनोमेरिक शर्करा में विघटित होता है और उसके बाद दूसरी इकाई में इसे इथेनॉल से किण्वित किया जाता है। इस पद्धति का मुख्य लाभ यह है कि दो प्रक्रियाएं (हाइड्रोलिसिस और किण्वन) अनुकूल परिस्थितियों में हो सकती हैं। 45–500 तापमान पर, सेल्यफलोंज सबसे अधिक दक्ष साबित हुए हैं, जबकि आमतौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले किण्वन जीवों का इष्टतम तापमान 30–37^{0}C होता है। सेल्यूलोज और सैक्रोमाइसेस सेरेविसिया के उपयोग से धान के पुआल को उपचारित करके इथेनॉल में परिवर्तित किया जा सकता है।

खादः बहुत से सूक्ष्मजीव जैसे कि कवक और बैक्टीरिया खाद बनाने के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। निर्जीव अवशेषों एवं लकड़ी पर मुख्यतः तीन प्रकार के कवक रहते है जो विशेषतः एक या अधिक अवशेषों को सड़ाते हैं जैसे कि कोमल सड़न, भूरी सड़न और सफेद सड़न कवक। कोमल सड़न कवक बहुत अच्छे से सेलूलोज को विघटित कर सकते हैं लेकिन वही लिग्निन को धीरे–धीरे और अपूर्ण रूप से विघटित करते है। भूरी सड़न वाले कवक आमतौर पर लिग्निन की ओर सक्रिय कार्बोहाईड्रेट घटकों को वरीयता देते है जो काफी हद तक डीमेथिलेशन (एक अणु से मिथाइल समूह (CH3) को हटाने के लिए रासायनिक प्रक्रिया) तक सीमित है। सफेद सड़न कवक लिग्निन और सेल्यफलोंज दोनों को तोड़ने में सक्षम हैं। सेल्यफलोंलिटिक बैक्टीरिया प्रकृति में सर्वव्यापी है और सेलफलोंमोनस और साइटोफागा एरोबिक मेसोफिलिक बैक्टीरिया हैं जो सेल्यूलोज को विघटित करने में सक्षम हैं। बैक्टीरिया सेलूलोज को उपयुक्त परिस्थितियों में विघटित करते हैं और उपयुक्त परिस्थितियों में बैक्टीरिया सेल्यफलोंज

को विघटित करते हैं और इसलिए कई जीवाणुओं के समूह बड़े पैमाने पर लिग्नोसेल्यूलोसिक संरचनाओं को खत्म करने और संशोधित करने के लिए जाने जाते हैं लेकिन लिग्निन को तोड़ने की उनकी क्षमता सीमित है। कम्पोस्ट में आमतौर पर महत्वपूर्ण पोषक तत्वों और कार्बन की अपेक्षाकृत कम मात्रा होती है और अन्य पोषक तत्वों को खाद के रूप में इकट्ठा किया जाता है जो फसल अवशेषों को एक बेहतर जैविक खाद में परिवर्तित कर देता है। यद्यपि धान कि पुआल से निर्मित जैविक खाद में प्रमुख पौषक तत्व जैसे कि नाइट्रोजन (एन) और फास्फोरस (पी) अक्सर कम होते हैं, लेकिन वे अधिक लाभदायक हो सकते हैं क्योंकि उनमें सूक्ष्म पोषक तत्व, एंजाइम और जीवाणु होते हैं जो अक्सर अकार्बनिक उर्वरकों में पाए जाते हैं।

धान की पुआल, पोटैशियम (0.3–20%), कार्बन (41%), नाइट्रोजन (0.5–0.8%), फॉस्फोरस (0.05–0.1%) और कैल्शियम (0.03–0.17%) से भरपूर होती है। धान के पुआल से कम्पोस्ट तैयार करने के लिए, 10 ग्राम एस्परजिलस आवमोरी टीका और यूरिया 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर घोल तैयार किया जाता है। इस घोल में सूखे पुआल का बंडल 3 मिनट के लिए भिगोया जाता है और फिर बाहर निकाल कर रख दिया जाता जिससे कि वह अतिरिक्त घोल को छोड़ दे। 5 मीटर लंबाई का ढेर बनाकर ढेर पर घोल का छिड़काव भी कर सकते है। इस ढेर में नमी बनाए रखने के लिए अनुपचरित पुआल या 20 से 30 सेमी परत की पॉलीथीन से ढ़क दिया जाता है।

ढेर में (70%) नमी बनाए रखने के लिए सप्ताह में एक बार पानी का छिड़काव किया जाती है और ये खाद 3–4 महीने में बनकर तैयार हो जाती है। खाद में 1.2–1.4% नाइट्रोजन, 0.6–0.7% फॉस्फोरस और 1.9–2.2% पोटैशियम होता है। इन धान की पुआल से निर्मित खाद का लाभ यह है कि इनमें बहुत सारे लाभकारी सूक्ष्मजीव और सूक्ष्म पौषक तत्व होते हैं जो फसल विकास और मिट्टी स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हैं जो आमतौर पर अकार्बनिक उर्वरकों में शामिल नहीं होते हैं। इन खाद से पौषक तत्व धीरे धीरे मिट्टी में मिलते हैं जिससे इनके लीचिंग एवं उच्च तापमान से नुकसान होने का खतरा न के बराबर है। कम्पोस्टिंग में उत्पन्न तापमान (55^0C से ऊपर) रोगजनक के स्तर को कम करता है और खरपतवार के बीजों की जमने कि क्षमता को भी कम करता है।

भूमि में रहने वाले असंख्य सूक्ष्मजीव फसल अवशेषों के प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। धान के पुआल में पाये जाने वाले बायोकार्बन से इथेनॉल के रूप में स्वच्छ ईंधन के साथ साथ मृदा उर्वरता और स्वास्थ्य को बनाए रखने में भी लाभदायक हैं जिससे कृषि उत्पादकता और जैव विविधता बढ़ सकती है।

गेंदे की फसल का व्यवसायिक उत्पादन

अरविन्द कुमार वर्मा, सनत सुजात सिंह एवं अशोक कुमार
औषधीय सुगंध एवं व्यावसायिक महत्वपूर्ण पादप कृषि प्रोद्योगिकी विभाग
सी.एस.आई.आर.–हिमालय जैवसंपदा प्रौद्योगिकी संस्थान, पालमपुर, हिमाचल प्रदेश

फूलों की व्यवसायिक खेती के लिए गेंदा एक महत्वपूर्ण फसल है। यह ऐस्टेरेसी कुल का वार्षिक पौधा है। विभिन्न आकर्षक रंगों तथा आकारों के कारण इसकी बाजार में मांग वर्ष भर रहती है। बाजार में मांग के अनुसार इसकी उपलब्धता बनाये रखने हेतु वर्ष के विभिन्न महीनों में इसकी बिजाई व फूल की तुड़ाई की जाती है। गेंदा, फूल उत्पादकों के लिए कम लागत, कम परिश्रम एवं अधिक आय वाली एक अच्छी फसल है। विश्व भर में इसकी लगभग 56 प्रकार की प्रजातियाँ पाई जाती हैं, परंतु फूलों के लिए व्यवसायिक खेती हेतु मुख्यतः अफ्रीकन गेंदा ***(टेजेटस इरेक्टा)*** एवं फ्रेच गेंदा ***(टे. पेचुला)*** को ही चयनित किया गया है। सी. एस. आई. आर.– हिमालय जैवसंपदा प्रौद्योगिकी संस्थान, पालमपुर द्वारा संचालित विभिन्न ग्रामीण विकास प्रयोजनाओं के अंतर्गत गेंदे ***(टेजेटस इरेक्टा)*** की खेती को बढ़ावा दिया गया है। गेंदे के फूल में सुंगध होने के कारण यह एक सुंगधीय फसल के रूप में भी उगाया जाता है। इसके अलावा गेंदे में पाये जाने वाले ल्यूटिन के कारण भी इसकी बाजार में मांग अधिक रहती है, जिससे उत्पादकों को अच्छी आय प्राप्त हो जाती है। अतः गेंदे की फसल से अधिक आय प्राप्त करने हेतु संस्थान ने इनसे मूल्य वर्धित उत्पाद जैसे अफ्रीकन/ जाफरी गेंदे से ल्यूटिन के पृथक्करण की विधियों को विकसित कर उनका मानकीकरण किया है। संस्थान द्वारा गेंदे की कृषि तकनीकों को पहाड़ी क्षेत्रों के लिए विकसित किया है। अतः हम कह सकते हैं, कि गेंदा एक महत्वपूर्ण एंव बहुउपयोगी कृषिगत् फसल है। गेंदा भारत के लगभग सभी राज्यों में पाया जाता है और वहां इसे स्थानीय नामों से जाना जाता है जिसका विवरण सारणी 1 में दिया गया है।

सारणी 1–राज्यों की स्थानीय भाशा में गेंदे के नाम

कम संख्या	राज्य का नाम	राज्य की स्थानीय भाशा	स्थानीय भाशा में नाम
	उत्तर प्रदेश	हिन्दी और संस्कृत	गेंदा, झंण्डु
	हिमाचल प्रदेश	हिमाचली	गट
	पष्चिम बंगाल	बंग्ला	ग्ेंदा
	तमिलनाडू	मद्रासी	झेंडु
	गुजरात	गुजराती	ग्लगोसे
	कर्नाटक	कन्नड्	चण्डुमाल्ग़ो
	केरल	मलयाली	चण्डुमल्ली
	आंध्र प्रदेश	तेलगु	वाण्टिचेट्ट
	उत्तराखंड	हिन्दी, संस्कृत	गेंदा, झंण्डु

उत्पत्ति एवं विस्तार

भारत मे गेंदा लगभग सभी राज्यों में उगाया जाता है। गेंदे का उत्पत्ति स्थल मेक्सिको एवं दक्षिणी अमेरिका है। यह 16 वीं शताब्दी में मेक्सिको से संसार के अन्य भागों में फैला। अफ्रीकन गेंदा 16 वीं शताब्दी मे सबसे पहले स्पेन में प्रवेश किया उसके बाद यह दक्षिणी यूरोप मे 'रोज आफ इंण्डिया अर्थात् भारत का गुलाब के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेंलिया, दक्षिण अफ्रीका, भारत, ब्राजील, केन्या, फ्रांस, उराग्वे एवं पैराग्वे के देशों में खेती के अलावा यह जंगली रूप में भी पाया जाता है।

प्रजातियां

गेंदे की लगभग 56 प्रजातियां विश्व भर में पायी जाती हैं जिसमें मुख्य प्रजातियां रूप से ***टेजेटस इरेक्टा, टे. पेचुला, टे. सिगनेटा, टे. ल्यूसिडा*** एवं ***टे. माइन्यूटा*** हैं। इन प्रजातियां का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है :–

1. टे. इरेक्टा

इसको अफ्रीकन गेंदा भी कहते हैं जिसमें गुणसूत्र संख्या 2 एन = 24 पायी जाती है। इस पौधे की औसत लम्बाई समान्यतः 90 से.मी. होती है। इसका फूल मध्यम से नारंगी, पीला या गोल्डन रंग का होता है। पौधे की पुष्प डंडी लम्बी होने के कारण इसको गुलदस्तों और बगीचों में सजावट के लिये प्रयोग करते हैं। सीएसआईआर–हिमालय जैवसंपदा प्रौद्योगिकी संस्थान, पालमपुर ने इस प्रजाति के सूखे फूलों से ल्यूटिन के उत्पादन की विधि विकसित की है।

2. टे. माइन्यूटा

इसे जंगली गेंदा के रूप में भी जाना जाता है। इसमें भी गुणसूत्र संख्या 2 एन = 24 होती है। पौधे की लम्बाई 2.5 मीटर तक होती है तथा फूलों का रंग सुनहरा पीला होता है। इस प्रजाति में सुगंध तेल की मात्रा अधिक होने के कारण इसको सुंगधीय फसल के रूप में उपयोग करते हैं, जिसकी मांग इत्र एवं फार्मास्युटिकल उद्योगों में होती है और व्यापारिक जगत में इसे ***टेजेटस*** तेल के रूप में जाना जाता है।

3. टे. पेचुला

यह जाफरी या फ्रेंच गेंदे के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह एक ट्रेट्रापोलाइड प्रजाति है और इसमें गुणसूत्र की संख्या 2एन = 48 पायी जाती है। पौधे की लम्बाई 60 से.मी. होती है। फूल छोटे, पीले या मिश्रित रंगों के होते हैं पुष्प डण्डी छोटी होने के कारण इसको पूजा पाठ, माला बनाने और उद्यानों में सजावट के लिये प्रयोग करते है।

4. टे. सिगनेटा

इसमें गुणसूत्र की संख्या 2 एन = 24 पायी जाती है। इसको बगीचों, गमले और क्यारियों में उगाते हैं अर्थात इसको भी सजावट के लिये प्रयोग करते हैं।

5. टे. ल्यूसिडा

यह बहुवर्षीय पौधा है। इसको मेक्सिकन या स्पेनिश टेरागॉन के रूप में भी जाना जाता है। इसमें गुणसूत्र की संख्या 2 एन = 22 पायी जाती है। फूलों का रंग पीला होता है। इसका तना बेलनाकार एवं पत्तियां सरल, रैखिक और आयताकार होती हैं। इसको बगीचों में सजावट के लिये प्रयोग करते हैं।

किस्म का चुनाव

गेंदे की अधिक उपज एवं गुणवत्ता वाली फसल प्राप्त करने हेतु किस्मों का चयन अति महत्वपूर्ण होता है। गेंदे का फूल कई छोटे–छोटे फूलों का समूह होता है। यह दो प्रकार के होते हैं रे–फ्लोरेट (बड़ी पंखुड़ी वाले फूल) तथा डिस्क–फ्लोरेट (बगैर पंखुड़ी वाले फूल)। गेंदे के फूल में अगर डिस्क मौजूद होती है तो उसकी गुणवत्ता कम आकी जाती है। इसलिए उस किस्म का चुनाव करना चाहिए जिसमें फूल केवल रे–फ्लोरेट ही हो। अतः गेंदे की कुछ महत्वपूर्ण किस्में निम्नवत् है।

अफ्रीकन गेंदा

पूसा नारंगी गेंदा, पूसा बसंती गेंदा, एम डी यू–1, जायन्ट डबल अफ्रीकन ओरेन्ज, जायन्ट डबल अफ्रीकन येलो, अलास्का, येलो फ्लफी, येलोस्टोन, गोल्डन जुबली, एप्रिकॉट, क्रेकर जैक, प्रिमरोज, है पिनेस, अर्का बंगारा, और हवाई आदि।

फ्रेंच गेंदा

(अ) सिंगल

लेमन ऑफ ऑनर, टेट्रा रफल्ड रेड और सन्नी आदि।

(ब) डबल

लेमन ड्राप, मेलोडी, हारमोनी, मिडगेट हारमोनी, पेटाइट हारमोनी, प्रिमरोज, स्पेनिश ब्रोकेड, रेड ब्रोकेड, येलो पिग्मी, गोल्डी, बोलेरो, बोनिटा, ब्राउनी स्कॉट एवं स्टार ऑफ इंडिया आदि।

हाईब्रिड् किस्में

अपोलो, फर्स्ट लेडी, गोल्ड लेडी, ओरेन्ज लेडी, इन्का गोल्ड एवं इन्का ओरेन्ज इत्यादि।

सी.एस.आई.आर.–हिमालय जैवसंपदा प्रौद्योगिकी

संस्थान, पालमपुर द्वारा अफ्रीकन गेंदे की चयन विधि से पहाड़ी क्षेत्रों के लिए एक नयी किस्म विकसित की है, जिसके फूलों का आकार काफी बड़ा है। इस किस्म को जल्दी ही रिलीज किया जाएगा।

गेंदे के पारंपरिक और आधुनिक महत्व को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि यह वास्तविक रूप से बहुत महत्वपूर्ण पौधा है, इस के कुछ महत्व निम्नवत् हैः

1. दैनिक महत्व

गेंदे के फूलों का इस्तेमाल माला बनाने, मन्दिरों में पूजा करने, विवाह एवं पार्टी में पण्डाल आदि सजाने में किया जाता है। अतः इसके लिये यह खुले फूलों के रूप में बाजार में बिकता है। इसके अलावा इसका प्रयोग गमलों में, गार्डन, लान एवं घरों के सौन्दर्यीकरण एवं लैंडस्केप में भी किया जाता है।

2. कृषि महत्व

गेंदे के पौधों में जैविक गुण होने के कारण यह किसानों के लिए बहुत ही लाभदायक है। जिस खेत में सूत्रकृमि की समस्या हो उस खेत में इसकी खेती करने से सूत्रकृमि का प्रकोप बहुत कम हो जाता है। गेंदे को यदि टमाटर की फसल के साथ उगायें तो टमाटर की फसल मे होने वाले फफूंद रोग (***अल्टरनेरिया सोलेनेई***) के प्रकोप को बहुत कम या नियन्त्रित किया जा सकता है। इसको तम्बाकू की फसल में ट्रैप क्रॉप के रुप में उगाया जाता है। गेंदे को तम्बाकू के खेत में बार्डर के रूप में प्रयोग करें और प्रत्येक तम्बाकू की 30 लाइनों के बाद प्रयोग करें तो ***हैलिकोवर्पा आर्मिजेरा*** के अण्डों एवं लार्वा को ट्रैप किया जा सकता है। अतः यह एक जैविक नियंत्रक फसल या ट्रैप कृषि के रूप में प्रयोग किया जाता है।

3. औघोगिक उपयोग

अफ्रीकन गेंदे मे ल्यूटिन वर्णक पाया जाता है, जिसका उपयोग दवा, न्यूट्रास्यूटिकल्स, खाद्य पदार्थ के रुप में भी किया जाता है। ल्यूटिन मुख्य रूप से फलों और सब्जियों विशेष कर पत्ते वाली सब्जियों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है परंतु इसे अन्य स्त्रोतों जैसे गेंदा से भी प्राप्त किया जाता है। अफ्रीकन गेंदे के सूखे फूलों से मुख्य रूप से ल्यूटिन प्राप्त किया जाता है, जो कैरिटोनाइड्स परिवार का पीला पौध वर्णक है अर्थात समान्यतः जैन्थोफिल रंगक का ही एक सदस्य है। परन्तु इसमें प्रोविटामिन नहीं पाया जाता है। इसको आम्सी कैरिटोनाइड्स भी कहा जाता है। ल्यूटिन का रासायनिक सूत्र $C_4OH_{56}O_2$ है तथा आणविक भार 560.00 है। हालांकि ल्यूटिन में सिस–आइसोमर की कुछ मात्रा ताजे कच्चे फलों, कोर्नमील, स्पेनिश एवं मनुष्य की प्लाज्मा में भी पाया जाती है। ल्यूटिन का अधिकतर उपयोग मुर्गी के दाने (पोल्ट्रीफीड) के रूप में किया जाता है। जिससे अण्डे के योक एवं मांस का रंग पीला हो जाता है और ऐसे उत्पादों की मांग बाजारों में अधिक होती हैं। दक्षिण भारत से ल्यूटिन (कैरिटोनाइड्स) मैक्सिको को निर्यात किया जा रहा है। ल्यूटिन का प्रयोग बेकरी उद्योग में खाद्य प्रदार्थो हेतु किया जाता है, इसके मुख्य उपयोग निम्नवत् (सारणी 2) हैः

सारणी 2– ल्यूटिन के मुख्य उपयोग :

क्रम संख्या	उपयोग	खाद्य पदार्थ
1	सूखे खाद्य पदार्थ	सूप, सूखे नूडल्श, मसाला या खाना स्वादिष्ट बनाने वाले पदार्थ, पास्ता और पिज़्ज़ा इत्यादि
2	मिष्ठान पदार्थ	कैंडी, कुकीज़, हलवा, खीर, मुरब्बा, अवलेह, मीठी चटनी और चॉकलेट
3	स्नैक्स	चावल क्रैकर और कुकीज़
4	किण्वित खाद्य पदार्थ	ब्रैड
5	अन्य	पोषण संबंधी और कार्यात्मक खाद्य पदार्थ

विश्व में 2010 तक ल्यूटिन का बाजार लगभग यू एस डॉलर 233 मिलियन था जोकि 3.6% की वार्षिक वृद्वि के साथ यह 2018 तक लगभग यू एस डॉलर 308 मिलियन तक पँहुच सकता है।

4. कृषि तकनीक

गेंदे की फसल अन्य पुष्प फसलों के मुकाबले में ज्यादा लोकप्रिय है, क्योंकि गेंदा हर प्रकार की जलवायु के प्रति सहनशील है, लम्बे समय तक फूल उत्पादन देता है तथा

फसल का रख रखाव आसान है। भारत में विभिन्न ऋतुओं और जलवायु के अनुसार अलग–अलग समय पर **गेंदे** की खेती की जा सकती है। उत्तरी और दक्षिणी पहाड़ियों में तथा हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, असम, बिहार, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा में दो फसलें ली जा सकती हैं। पहली फसल फरवरी–मार्च से जून तक ली जाती है तथा दूसरी सितंबर से दिसम्बर तक ली जा सकती है। ऊपरी पहाड़ी क्षेत्रों में सिर्फ एक ही फसल अप्रैल से जुलाई–अगस्त तक ली जा सकती है। बैगंलूर तथा कर्नाटक के अन्य हिस्से जहां जलवायु गर्मियों में अनुकूल रहती है, **गेंदे** की फसल मई महीने में लगाई जाती है एवं फूल अगस्त से अक्तूबर तक लिए जा सकते हैं। मौसम के अनुसार पुष्प उत्पादन तीन ऋतुओं में लिया जा सकता है, जिसे सारणी 3 में दिखाया गया है।

सारणी 3– गेंदे की बीज बुवाई एवं पौध रोपण का समय :

पौध रोपण का समय	बीज बुवाई का समय	पुश्पन ऋतु
मध्य–जुलाई	मध्य–जून	वर्षा
मध्य–अक्टुबर	मध्य–सितम्बर	सर्दी
फरवरी–मार्च	मध्य–फरवरी	गर्मी

जलवायु एवं मृदा

इसकी अनुकूलतम वृद्वि हेतु 15^0–29^0C तापमान उपयुक्त होता है, परंतु ज्यादा अधिक तापमान होने पर इसकी वृद्वि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और फूलों का आकार भी छोटा होता है। इसकी खेती हेतु बलुई दोमट मिट्टी जिसका पी. एच. मान 6.5–7.5 के मध्य हो, सर्वोतम होती है।

कृषि तकनीक

भूमि की तैयारी

अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए खरपतवार रहित हल्की से मध्यम भारी मिट्टी सर्वोतम मानी जाती है। कठोर मिट्टी और खरपतवारों के जल्द उगने से इसकी वृद्वि रूक जाती है। भूमि को हल एवं हैरो चलाकर और पाटा फेरकर तैयार करना चाहिए। पौध रोपने से पहले प्रति हैक्टेयर भूमि में 20 से 30 टन कम्पोस्ट खाद या गोबर की खाद को मिट्टी में अच्छी तरह से मिलाना चाहिए, हालांकि यह मात्रा भूमि की उर्वरता के अनुसार कम व ज्यादा की जा सकती है। पौध रोपण के समय एक बार सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

प्रवर्धन

गेंदे का प्रवर्धन पौध की वानस्पतिक शाखा से किया जा सकता है। परन्तु बड़े क्षेत्र में फसल लगाने के लिए इसका बीज पौधशाला में बोकर पौधे तैयार कर के खेत में प्रतिरोपित करते हैं। **गेंदे** के बीज छोटे एवं हल्के होते हैं और लगभग 150 बीज प्रति ग्राम में होते हैं। अच्छी गुणवत्ता वाला बीज काले रंग का होता है। बीजों को कम गहरी मिट्टी में बोना चाहिए। अधिक गहराई से बीजने से बीज अंकुरित नहीं हो पाते। सही वितरण के लिए बीजों को अच्छी तरह गली–सूखी खाद, रेत, बुरादा आदि के साथ मिलाकर बोना चाहिए।

पौधशाला तैयारी और प्रतिरोपण

गेंदे की पौध तैयार करने हेतु प्रति हैक्टेयर 800 ग्रा. से 1 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता हैं। इसकी पौधशाला के लिए 1 मी. चौड़ी और आवश्यकतानुसार लंबी पट्टीदार ऊंची उठी हुई क्यारियां बनानी चाहिए ताकि खरपतवार, जल निकास, सिंचाई और पौध को उखाड़ने आदि, कृषि कार्य आसानी से किये जा सकें। प्रत्येक क्यारी में कम्पोस्ट खाद और 100 ग्रा. एनःपीःके (12:32:16) या डी.ए.पी. 50 कि.ग्रा. गोबर खाद के साथ डालनी चाहिए। क्यारियों में रेत भी डालनी चाहिए। बीजों को एक मीटर की पंक्तियों में 5 सें.मी. की दूरी पर लगा कर उसे मिट्टी की हल्की सी परत से ढक देना चाहिए। पौधशाला में पर्याप्त नमी हेतु प्रतिदिन हल्की सिंचाई करनी चाहिए। बीजने के बाद लगभग 10 दिनों के बाद अंकुरण शुरू हो जाता है। बिजाई के 40 दिनों के भीतर जब पौध 10 से 15 सें.मी. ऊँची हो जाए तो यह प्रतिरोपण के लिए तैयार हो जाती है। अफ्रीकन **गेंदे** की तैयार पौध को खेत में लगाने के लिए पौधों एव पंक्तियों के मध्य 40×40 सें.मी. का फासला होना चाहिए। जबकी फ्रैंच **गेंदे** में 30×30 से.मी. का फांसला होना चाहिए। पौध रोपन शाम के समय करना चाहिए और रुपाई के बाद

अच्छी तरह सिंचाई कर देनी चाहिए।

खाद व उर्वरक

भूमि की तैयारी हेतु प्रति हैक्टेयर 15 से 20 टन गोबर–खाद के अतिरिक्त फसल के लिए 42 किलो नत्रजन, प्रति हैक्टयर की आवश्यकता होती है। पौध लगाने के समय उरर्वक की सारी मात्रा पंक्तियों में 4–5 सें.मी. गहरे मिला देनी चाहिए।

सिंचाई एवं जल निकासी

पौधे की उचित वृद्धि के लिए खेत मे पर्याप्त मात्रा में नमी की आवश्यकता होती है। सिंचाई जल का पी.एच. मान 6.5–7.5 होना चाहिए एवं फसल लगाने के तुरन्त बाद सिंचाई करनी चाहिए। गर्मी के समय 5–6 दिन एवं शरद मौसम में 8–10 के अन्तर पर या फसल की आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। वर्षा के अतिरिक्त जल के निकास हेतु उचित प्रबंध होना चाहिए। भारत के उन क्षेत्रों में जहां गर्मी अधिक होती है, पौधों की रोपाई जमीन की सतह से 10 से.मी गहरे खंडों में की जाती है जिससे सिंचाई के बाद ज्यादा समय तक नमी पौधों की जड़ों में बनी रहे।

अंतः कृषि कियाएं

जंगली गेंदा शुरू के दिनों में बहुत धीमी गति से बढ़ता है। यह मौसमी खर–पतवारों के प्रकोप से प्रभावित हो जाता है। सामान्यतः अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए 2–3 बार खर–पतवार निकासी और एक बार गुड़ाई आवश्यक है। वर्षा ऋतु में हाथ द्वारा खर–पतवार की एक निकासी से ही इस बाधा को दूर किया जा सकता है तथा अच्छी फसल प्राप्त की जा सकती है। **गेंदे** के पौधों की वृद्धि ऊंचाई की तरफ बढ़ती है तो गिरने की आशंका हो जाती है। अतः शीर्षस्थ भाग में पाए जाने वाले इंडोल एसीटिक एसिड को कम करने हेतु इसके शीर्षस्थ भाग को तोड़ कर पौधे की शीर्ष वृद्धि को रोककर अधिक टहनियों को पनपने के लिए पौधे को प्रेरित किया जा सकता है। रोपने के 30–45 दिनों तक अच्छी शाखाओं की प्राप्ति के लिए शीर्ष भाग को तोड़ देना चाहिए। जिससे प्रति इकाई क्षेत्र में फूल की मात्रा अधिक होती है।

कीट और बीमारियां

सामान्यतः गेंदे की फसल मे कीट और बीमारियाँ कम ही लगती हैं परंतु अच्छी गुणवत्ता के फूल प्राप्त करने के लिए फसल का कीटों और रोगों से बचाव करना अति आवश्यक होता है। कुछ कीट एवं रोगों का नियंत्रण इस प्रकार हैः

एफिड्सः यह पत्तियों, तनों एवं पुष्प कलिकाओं का रस चूसने वाला कीट है, इसके कारण पौध की वृद्वि नहीं हो पाती है। इससे बचाव के लिए मैलाथियान अथवा इंडोसल्फान का 2.0 मिलीलीटर प्रति लीटर का घोल बना कर छिड़काव करना चाहिए।

कैटरपिलर

यह काले भूरे एवं हरे रंग का कीट होता है। यह भी पौधे की पत्तियों, तनों एवं पुष्प कलिकाओं को नुकसान पहुँचाता है। इसके लिए भी मैलाथियान अथवा इंडोसल्फान का 1.5 मिलीलीटर प्रति लीटर का घोल बना कर छिड़काव करना चाहिए।

लीफ माइनर

इसके ग्रसित पौधे की पत्तियों पर सफेद धारियाँ बन जाती है, जिसका फसल के उत्पाद पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसकी रोकथाम हेतु इंडोसल्फान का 1.5–2.0 मिलीलीटर प्रति लीटर के घोल छिड़काव करना चाहिए।

रोग

गेंदे में लगने वाले कुछ प्रमुख रोग निम्नवत् हैः

डैम्पिंग आफ

यह समान्यतः र्नसरी मे पौध तैयार करते समय अधिक पानी की वजह से लगता है, इसकी रोकथाम हेतु क्यारी में बिजाइ से पहले क्यारी को कैप्टान (0.2 प्रतिशत) या फॉर्मेल्डीहाइड (2.0 प्रतिशत) के घोल से उपचरित कर लेना चाहिए। क्यारियाँ भी ऊंची एवं उठी हुई बनानी चाहिए।

पाउड़री मिल्ड्यू

इसका असर पत्तियों पर सफेद पाउडर के रूप में दिखाई देता है, अधिक प्रकोप होने पर यह धीरे–धीरे पूरे

पौधे पर फैल जाता है। इसकी रोकथाम हेतु कैराथेन का 1.0 मिलीलीटर प्रति लीटर के हिसाब से घोल का छिड़काव करना चाहिए।

लीफ स्पॉटः

इसके ग्रसित पौधे की पत्तियों पर भूरा एवं गोलाकार धब्बे दिखाई देते हैं, जोकि धीरे–धीरे पूरे पौधे को ही खराब कर देते हैं। इसके बचाव हेतु बाविस्टीन का 1.0–1. 5 ग्राम पाउडर को प्रति लीटर के हिसाब से घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

उपज (प्रति हेक्टर)

पौध रोपाई के लगभग दो महीने बाद फूल उत्पादन शुरु कर देते हैं। फूलों की उपज, ऋतु के ऊपर निर्भर करती है। वर्षा के मौसम में 200–225 क्विटंल, ग्रीष्म में 150–175 क्विटंल तथा सर्दियो में 100–125 क्विटंल प्रति हेक्टर फूल प्राप्त किये जा सकते हैं। इसका बाजार भाव इसकी माँग के अनुसार बदलता रहता है। यह आसानी से 70–100 रूपये प्रति किलोग्राम के भाव से बेचा जा सकता है। फूलों को पूर्ण विकसित होने पर ही तोड़ना चाहिए। तुड़ाई सुबह या शाम को करनी चाहिए। फूलों की पैदावार बढ़ाने के लिए समय–समय पर तुड़ाई करते रहना चाहिए।

पैकिंग

गेंदे के फूलों की तुड़ाई के बाद बोरी अथवा बांस की टोकरियों में पैक करना चाहिए। पैक किये गये गेंदे के फूलों को ट्रकों, बसों अथवा रेलवे द्वारा मंडियों में पहुंचाया जाता है।

किसान गेंदे की फसल से बीज उत्पादन भी कर सकते हैं तथा बीज बेचकर अधिक लाभ कमा सकते हैं, और साथ ही बीज बचा कर अगली फसल तैयार करने की लागत को भी कम कर सकते हैं। गेंदा एक परपरागित फसल है, जिसमें पराग वितरण मधुमक्खियों द्वारा होता है। इसलिए दो किस्मों की दूरी लगभग 1.5 किलो मीटर तक होनी चाहिए। फूल उत्पादन के समय छोटे, बेरंग एवं डिस्क वाले फूलों के पौधों को उखाड़ देना चाहिए, जिससे फसल की गुणवत्ता बनी रहती है। एक ग्राम में 150–200 बीज होते हैं तथा अच्छी गुणवत्ता वाला बीज काले रंग का होता है। एक हैक्टर क्षेत्र के लिए 1.5–2 किलोग्राम बीज प्राप्त होता है। बीज को शुष्क तथा हवा बंद डिब्बों में रखना चाहिए। इन बातों को ध्यान में रखते हुए किसान आसानी से गेंदे की फसल के साथ बीज का उत्पादन भी कर सकते हैं।

भारत की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु फसल का विविधिकरण एक महत्वपूर्ण घटक के रुप में उभरा है तथा व्यवसायिक पुष्पोत्पादन अन्य कई फसलों से अधिक लाभदायक पाया गया है। विभिन्न पुष्पों में गेंदा पुष्प की कई विशेषताएं हैं जैसे कि विभिन्न जलवायु के लिए सहनशीलता, कम लागत एवं रख रखाव, सुंदर सुगंन्धित फूल जिनका जीवन काल अच्छा है, इन फूलों के कई पारंपरिक और आधुनिक उपयोग भी हैं और इसके अतिरिक्त गेंदे की खेती लगभग वर्ष भर की जा सकती है। किसान भाई गेंदे के फूल की खेती से प्रति इकाई क्षेत्रफल अधिक आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। सी.एस.आई.आर.–हिमालय जैवसंपदा प्रौद्योगिकी संस्थान, पालमपुर प्रयासरत् है कि पहाड़ी क्षेत्रों के किसानों के लिए नई फसलों को वैज्ञानिक विधि द्वारा उगवा कर रोजगार एवं लाभ उपलब्ध करवा सके, अतरू इस दिशा में गेंदे की व्यवसायिक खेती अपना कर किसान लाभ अर्जित कर सकते हैं।

आधुनिक कृषि में बीजोपचारः समय की जरूरत

नीरज पतंजलि, इन्दु चोपड़ा, एवं अनुपमा सिंह
कृषि रसायन संभाग,
भा.कृ.अनु.प–भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली–110012

प्रायः यह माना जाता है कि स्वस्थ बीज ही स्वस्थ फसल का आधार है। यदि किसान द्वारा खेत में प्रयोग लाए जाने वाला बीज हानिकारक कीटों या रोग कारक जीवाणुओं द्वारा संक्रमित होता है तो इससे फसल के उत्पादन और किसान को होने वाले लाभ पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। इस परेशानी को ध्यान में रखते बीज को बोने से पहले यदि उपचारित कर दिया जाए तो कीटों और बीमारी संबंधित समस्या को काफी हद तक कम किया जा सकता है जब बीजों को रासायनिक पीड़कनाशियों, रासायनिक उर्वरकों अथवा जैव–उर्वरकों के साथ अलग अलग या उनके मिश्रण के साथ लपेटा/चिपकाया जाता है तो इस प्रक्रिया को बीजोपचार कहा जाता है। बीजोपचार प्रक्रिया को विभिन्न सक्रिय घटकों जैसे जीवाणु कल्चर (राइजोबियम, एजोटोबेक्टर, स्यूडोमोनास, फोस्फोबैक्टीरिया) एवं कृषि–रसायनों (कार्बेन्डाजीम, कैप्टान, थीराम, ट्रायसाइक्लाजोल, क्लोरपायरीफॉस, इमीडाक्लोप्रीड) या उर्वरकों (कॉपर सल्फेट, जिंक सल्फेट आदि) के साथ किया जा सकता है।

बीज बोने से पहले उसका उपचार करना किसान के लिए काफी फायदेमंद साबित हो सकता है क्योंकि शुरूआती दिनों में पौधे को होने वाली बीमारी या कीटों से हुआ नुकसान स्थायी हो सकता है। जिससे उबरने के लिए अधिक मूल्य खर्च करने पर भी किसान क्षति से पूरी तरह उबरा नहीं पाता। बीजोपचार पौधे के लिए कवच के समान है जो न केवल शुरुआती मौसम के कीड़ों और बीमारियों को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है अपितु अंकुर की स्थापना और ताकत में सुधार करने में भी सहायता करता है। इसके अलावा यह विधि पौधों को पोषक तत्वों की आपूर्ति सुनिश्चित करने में भी सहायक सिद्ध हो सकती है। सामान्यतः बीजोपचार प्रक्रिया में सक्रिय घटक को किसी चिपकने वाले पदार्थ एवं रंग (चेतावनी संकेत के रूप में) के साथ मिला कर बनाया जाता है। इस प्रकार सक्रिय घटक की एक पतली परत बीज पर चिपक जाती है।

बीजोपचार की प्रक्रियाः

बीज उपचार एक शब्द है जो उत्पादों और प्रक्रियाओं दोनों का वर्णन करता है। बीज पर चढ़ाई जाने वाली सक्रिय घटक/घटकों की परत के आकार के आधार पर बीजोपचारित उत्पादों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता हैः

1. फिल्म कोटिंगः यह बीज उपचार का सबसे सरल और सस्ता तरीका है। इस विधि से बीजोपचार करने के बाद बीज का रूप व् आकार मूल बीज के जैसा ही रहता है। इस प्रक्रिया में उपचारित बीज का वजन मूल बीज की तुलना में लगभग 10 प्रतिशत तक बढ़ जाता है।

2. एनक्रिस्टंग (encrusting): यह विधि फिल्म कोटिंग के समान ही है। इसमें केवल यह अंतर है कि इस विधि के द्वारा उपचारित बीज पर चढ़ाई जाने वाली सक्रिय घटक की परत फिल्म कोटिंग की अपेक्षा अधिक मोटी होती है। इसके कारण उपचारित बीज का वजन मूल बीज की तुलना में लगभग 100 से 500 प्रतिशत तक बढ़ जाता है।

3. बीज पैलेटिंग (सीड पैलेटिंग): इस विधि के द्वारा बीज को उपचारित कर के ऐसा रूप दिया जाता है (आमतौर पर गोलाकार रूप) कि बाहरी रूप से बीज को पहचानना असंभव होता है। इस विधि का प्रयोग उच्च लागत वाली फसलों के बीजों को उपचारित करने के लिए किया जाता है। यह विधि सभी बीजोपचार विधियों में सबसे महंगी है।

बीजोपचार के लाभ

बेहतर अंकुरणः उचित पीड़कनाशी द्वारा उपचारित बीज आंतरिक व बाह्य सतह पर उपस्थित जीवाणु, विषाणु एवं कीटों से सुरक्षित रहते हैं। वहीं उचित जैव–उर्वरक द्वारा किया गया बीजोपचार पोषक तत्वों की उपलब्धता को सुनिश्चित करता है। इस विधि का प्रयोग करते हुए बेहतर

अंकुरण के साथ पौधों के अच्छे विकास का लाभ भी लिया जा सकता है।

लागत में कमी: बीजोपचार में पारंपरिक तरीके की तुलना में कीटनाशकों और उर्वरकों का काफी कम मात्रा में उपयोग होता है परन्तु इसके बावजूद इनका प्रभाव लम्बे एवं प्रभावी समय तक बना रहता है। इस प्रकार किसान कम लागत में अधिक फसलांत्पादन कर अधिक मुनाफा कमा सकते हैं।

पर्यावरण पर अनुकूल प्रभाव: प्रायः इस्तेमाल किये गए कीटनाशकों का केवल 10–20% हिस्सा ही निर्धारित/अपेक्षित उद्देश्य के लिए इस्तेमाल हो पाता है तथा बाकी बचा 80–90% हिस्सा पर्यावरण एवं गैर–लक्षित जीवों तक पहुँच कर उन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इसकी तुलना में बीजोपचार विधि में प्रयोग किये गए कीटनाशक लगभग 50–70% तक इस्तेमाल हो जाते हैं जिसके कारण पर्यावरण पर इनका कम प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सम्भावना कम हो जाती है।

कीटनाशक प्रयोगकर्ता को बेहतर सुरक्षा: पारंपरिक तरीकों से कीटनाशक प्रयोग करने पर प्रयोगकर्ता सांस द्वारा कीटनाशकों के अधिक संपर्क में आता है जो उसके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। वहाँ बीजोपचार में कीटनाशक बीज के साथ चिपक जाता है एवं सांस के साथ शरीर में नहीं पहुँच पाता। इस प्रकार से बीजोपचार विधि प्रयोगकर्ता पर कीटनाशकों के प्रयोग से होने वाले दुष्प्रभावों को कम करने में सहायक है।

बीजोपचार में सावधानियां

- कुछ जैव–उर्वरक जैसे राइजोबियम फसल विशिष्ट होते हैं। इसलिए बीजोपचार करते समय इस बात का ध्यान रखते हुए फसल के अनुसार सही जैव उर्वरक का उचित मात्रा में ही प्रयोग किया जाना चाहिए।
- कल्चर से उपचारित बीज की बुआई शीघ्र (सामान्यतः 8 घंटे के अंदर) कर देनी चाहिए।
- यदि जीवाणु कल्चर के साथ फफूंदनाशी अथवा कीटनाशी रसायनों से भी बीजोपचार करना हो तब क्रमानुसार पहले क्रमशः फफूंदनाशी और फिर कीटनाशी का प्रयोग किया जाना चाहिए। साथ ही इस बात का ध्यान भी रखा जाए कि इन उपचारों में लगभग 8 से 10 घंटे के अन्तराल हो। इसके उपरान्त अगले दिन जीवाणु कल्चर से बीज उपचार करना चाहिए।
- उपचारित बीजों को सुखाने के लिए छायादार जगह का प्रयोग करें तथा इन्हें कभी भी सीधे धूप में न सुखायें। इसके अलावा उपचारित बीजों से सबको खासकर बच्चो एवं पक्षियों की पहुँच से दूर रखें।
- बीजोपचार करते समय हमेशा हाथों में दस्ताने पहनें एवं मुह पर कपड़ा बांधकर रखें। यदि संभव हो तो आँखों पर चश्मा भी पहन लें। यह प्रक्रिया पूरी होने के बाद हाथ–पाँव व चेहरा भी साबुन से अच्छी तरह धो लें।

बीजोपचार हेतु बाजार में उपलब्ध उत्पाद

- **ड्राई सीड पाउडर:** इस उत्पाद में धूल समान बारीक कण होते हैं जो इस्तेमालकर्ता की सांस द्वारा शरीर में पहुँच कर नुकसान पहुंचा सकते हैं। इसकी बीज के साथ चिपकने की क्षमता भी कम होती है।
- **वाटर स्लरीयेबल पाउडर:** इस उत्पाद को पहले पानी के साथ मिलाकर पेस्ट बनाया जाता है। उसके बाद इस पेस्ट की पतली परत बीज पर चढ़ाई जाती है।
- **साल्वेंट आधारित सूत्रण:** ये उत्पाद पानी रहित होते हैं। इस उत्पाद में इस्तेमाल होने वाले साल्वेंट पर्यावरण के लिए घातक होते हैं।
- **फ्लोएबल सस्पेंशन:** ये उत्पाद ऊपर उल्लेखित सूत्रणों की तुलना में पर्यावरण के लिए बेहतर हैद्य इसके अलावा इस उत्पाद की बीजों के साथ चिपकने की क्षमता भी अच्छी है जिसके चलते ये किसानों के बीच अधिक लोकप्रिय हैं।

बीजोपचार प्रक्रिया एक ऐसी सरल विधि है जिसके द्वारा कम कीटनाशकों और उर्वरकों का उपयोग करते हुए भी फसलांत्पादन का पूरा लाभ उठाया जा सकता है। इसके साथ ही यह विधि परम्परागत तरीके से की जा रही खेती की तुलना में पर्यावरण को भी कम नुकसान पहुँचाती है। इसलिए समय की जरूरत को देखते हुए आधुनिक कृषि में इस विधि का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग व् प्रसार किया जाना चाहिए।

फलों एवं सब्जियों का कटाई उपरांत प्रबंधन तथा मूल्यसंवर्धन

प्रतिभा जोशी, विजय भान सिंह एवं आनंद विजय दुबे
कैटेट
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संधान, नई दिल्ली

हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों में विविध किस्म के फल और सब्जियों को उगाया जाता है जो कि संतुलित आहार का एक अभिन्न अंग है। आहार एवं पोषण विशेषज्ञों के अनुसार संतुलित आहार के लिए वयस्क महिला व पुरूष को प्रतिदिन 100 ग्राम फल का सेवन करना चाहिए, इन्हें रक्षात्मक खाद्य पदार्थों की श्रेणी में रखा गया है क्योंकि इनके लगातार उपभोग से कई जटिल बीमारियों से बचा जा सकता है। धान्य व दलहनी फसलों की अपेक्षा फल बहुत अधिक नाषवान प्रकृति के होते हैं। इस कारण उनका गठन मुलायम व श्वसन क्रिया अधिक होने के कारण, इन्हे ढुलाई एवं भंडारण के दौरान से सूक्ष्मजीव प्रभावित करते हैं जो कई रोगों का कारण बन जाते हैं। ऐसा अनुमान है कि फल उत्पादन का लगभग 30–40 प्रतिशत हिस्सा तुड़ाई उपरांत कुप्रबंधन के कारण क्षतिग्रस्त हो जाता है। फलों को तुड़ाई उपरांत मुख्यतः फफूंदी एवं कुछ जीवाणु द्वारा जनित रोग लगते हैं। यदि ऐसे उत्पादन को समय से मूल्य संवर्धित उत्पादों में बदलकर इसका 1 प्रतिशत भाग भी बचा लिया जाता है, तो प्रति वर्ष इससे लगभग 67.5 करोड़ रुपये की बचत होगी। फल व सब्जियों का फसलोत्तर प्रबंधन आज हमारी जरूरत है ताकि सामान्य रूप से विश्व और विशेष रूप से भारत की बढ़ती आबादी को पौष्टिक भोजन मिलता रहे। परन्तु यदि कुछ महत्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखा जाएं तथा कुछ साधारण क्रियाएं अपनाई जाएं तो फलों के काफी हिस्से को नष्ट होने से बचाया जा सकता है। इससे न केवल किसान को आर्थिक लाभ होगा बल्कि देश की अर्थव्यवस्था को सुधारने में एक अच्छा प्रयास होगा।

फलों एवं सब्जियों का कटाई उपरांत प्रबंधन

फसल कटाई के बाद इसकी गुणवत्ता को सुधारना असंभव होता है क्योंकि फल एवं सब्जियों में नमी की मात्रा अधिक होती है, जिससे स्वाभाविक रूप से ये अपेक्षाकृत जल्द खराब (विकारीय) हो जाते है। कटाई उपरांत ये जैविक रूप से भी अधिक सक्रिय होते हैं और इनकी श्वसनक्रिया चलती रहती है, जिससे ये पकना शुरू कर देते हैं और इनमें कई जैवरासायनिक क्रियाएं उत्पन्न होती हैं जो इनकी गुणवत्ता पर प्रतिकूल असर डालती हैं। फसलोत्तर गुणवत्ता पर कर्षण प्रक्रियाएँ भी असर डाल सकती हैं तथा मशीनी क्षति जैसे – रगड़ लगना, छीलना, टूट जाना आदि के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील होता है।

पक्वता सूचकांक एवं कटाई मानदंड

कटाई के लिए पक्वता के सही चरण का चयन ऐसा महत्वपूर्ण पहलू है जिसका भंडारण–जीवन एवं गुणवत्ता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। फल एवं सब्जियों की कटाई के बाद की गुणवत्ता, इसके भंडारण एवं बाजार में इसकी बिक्री के योग्य इसके जीवन के लिए इनकी पक्वता के चरण का निर्धारण करना बेहद जरूरी है ताकि इनकी तुड़ाई सही समय पर हो।

तलिका 1. व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण फलों के पक्वता सूचकांक

फल	पक्वता सूचकांक
आम	इसकी पक्वता के लिए सुझाए गए विविध मानदंड जैसे स्कंध पर चमकीला लाल रंग, एक या दो पके फलों का प्राकृतिक रूप से पेड़ से टूटकर जमीन पर गिरना आदि है। फल के विशिष्ट घनत्व का 1.01 से 1.02 की श्रृंखला में होना और सामान्यतौर पर फलों को परिपक्व होने में 90 से 120 दिन का समय लगता है।

केला	इसकी तुड़ाई आमतौर पर तब होती है जब त्वचा की सतह पर कटक, कोणीय स्थिति से गोलाकार हो जाती है । अन्य कुछ शारीरिक संकेतों एवं रासायनिक विष्लेषण से भी पक्वता का निर्धारण होता है। हालांकि लम्बी दूरी पर फलों की आपूर्ति के लिए कटाई सूचकांक के रूप में 3/4 पक्वता को प्राप्त किया जाता है।
सिट्रस (नीम्बू वर्गीय फल)	इनकी सामान्यतया तुड़ाई उस समय होती है जब छिलके के रंग में बदलाव आता है। नीम्बू की पक्वता की जाँच के मानदंड के रूप में इसका रंग हरे से पीला होना माना जाता है। सिट्रस में कुल घुलनशील ठोस ;टी एस एस) : अम्ल अनुपात को पक्वता की जाँच के लिए अच्छा सूचकांक माना जाता है जो कि एक किस्म से दूसरी किस्म में भिन्न होता है।
पपीता	फलों को पूर्ण पक्वता तक पेड़ पर रहने दिया जाता है। इनकी तुड़ाई आमतौर पर तब होती है जब यह पूरा आकार ले लेता है और अग्रस्थ छोर पर हल्के हरे से हल्का पीला रूप धारण कर लेते हैं। पक्वन पर लैटिक्स दूधिया से जलीय हो जाता है।
अनन्नास	इसकी आमतौर पर तुड़ाई उस समय की जाती है जब सतह का रंग टूटा–टूटा हो। यदि अनन्नास को समुद्री मार्ग से भेजना हो तो इसका रंग चौथाई पीले के बीच का होता है, और जब यह तीन चौथाई से आधा पीले रंग का होता है तो इसे वायु मार्ग से भिजवाया जा सकता है।
अंगूर	अंगूरों में आधारीय बेरी पहले परिपक्व होती हैं और पक जाती हैं और अपरिपक्व बेरियों की तुड़ाई फायदेमंद नहीं रहती क्योंकि तुड़ाई के बाद यह पकती नहीं हैं। फसल की किस्म के आधार पर गहरे हरे रंग का हल्का हरा होना पीला या लाल या बैंगनी होना ¼अर्थात शारीरिक बनावट में होने वाले बदलाव½ एवं बेरियों की चमक एवं मुलायमता आदि बातों को भी पक्वता की जाँच के लिए सूचकांक के रूप में लिया जाता है।
चीकू	चीकू में पक्वता की जाँच के लिए बहुत से मानदंडों का सुझाव दिया गया है, जैसे – संतरे के समान हल्का रंग या आलू वाला रंग, रगड़ने पर हरी रेखा (धारियों) की बजाय हल्का पीली रेखा (धारियाँ) दर्शाना और फल की सतह से भूरा शल्क का विलुप्त होना।
अमरूद	पुष्पन के 4–5 महीनों के बाद फल अपनी पूर्ण अवस्था में आ जाता है। पक्वता पर विशिष्ट घनत्व 0.95 से 0.96 के बीच बदलता रहता है जबकि टी एस एस एवं अम्ल की मात्रा 12 – 13 डिग्री ब्रिक्स और 0.36 से 0.41 प्रतिशत के बीच होती है।
कटहल	फल की तुड़ाई का अनुकूल समय निर्धारित करने के लिए बहुत से सूचकांकों का सामान्य रूप से प्रयोग किया जाता है। जब फल पर अंगुली से दस्तक दी जाती है तो इसमें से मंद एवं धीमी ध्वनि उत्पन्न होती है, फल स्पाइन सुविकसित होकर चौड़ा हो जाता है, स्पाइन दबाने पर दब जाता है। दूर–दराज के बाजार के लिए जब फल सख्त और महकरहित हो तो इसकी तुड़ाई कर लेनी चाहिए।
अनार	पुष्पन के 5–6 महीनों के भीतर फल तुड़ाई के लिए तैयार हो जाता है। फलो को त्वचा के हल्का पीले पड़ने और अंगुली से दस्तक देने पर एवं धात्विक ध्वनि देने पर तोड़ लिया जाता है। इसी तरह पके हुए फल के छिलके पर थोड़ा सा दबाव डालने पर ऐसा महसूस होता है कि दाना अंदर ही अंदर टूटने लगा हो तो इसकी तुड़ाई कर लेनी चाहिए।
सेब	जब फल शाखा से आसानी से अलग हो जाए और इसका गूदा सख्त बना रहे तथा स्वाद भी सही हो तो इसकी तुड़ाई की जा सकती है। पक्वता पर त्वचा का रंग किस्म के आधार पर हरा से पीला या लाल हो जाता है। पुष्पन के बाद दिन गिन कर भी पक्वता का पता लगाया जा सकता है जो कि प्रारंभिक पक्वता के 90 ± 4 से लेकर अंतिम पक्वता में 180 ± 5 दिन के बीच का कोई भी समय हो सकता है।
नाशपाती	जब डिब्बाबंदी करनी हो तो सख्त और हरा रंग होने पर फल की तुड़ाई कर ली जाती है जबकि पूर्णतया परिपक्व फलों की तुड़ाई ताजे उपभोग के लिए की जा सकती है। पूर्ण पुष्पन से दिन गिन कर, टी एस एस एवं फल के सख्तपन जैसी बातों के आधार पर भी पक्वता की जाँच की जा सकती है।
आड़ू	फल के आकार, बनावट, सख्तपन एवं फल की स्टार्च मात्रा जैसी बातों के आधार पर आड़ुओं की पक्वता की जाँच का सुझाव दिया गया है। आमतौर पर भंडारण के अलावा कहीं ले जाने के लिए आड़ुओं को तभी तोड़ा जाता है जब वे काफी सख्त होते हैं।
आलू बुखारा	अपनी किस्मों के आधार पर फल का हरे से पीला होना या लाल होना, फल का सख्त पन एवं इसकी टी एस एस परिमात्रा एवं पूर्ण पुष्पन से दिन गिनकर फलों की पक्वता का निर्धारण किया जाता है।

स्ट्राबेरी	स्ट्राबेरी की तुड़ाई तब होती है जब इसकी त्वचा का आधे से तीन चौथाई तक के भाग का रंग विकसित हो जाता है। दूर–दराज के क्षेत्रों में भेजने के लिए हरा या सफेद और सख्त स्ट्राबेरी की तुड़ाई की जाती है।

तलिका 2. व्यावसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सब्जियों के पक्वता सूचकांक

सब्जियॉ	पक्वता सूचकांक
ब्रोकली	तुड़ाई की श्रेष्ठ अवस्था, कलियों के खिलने से पहले का समय, शीर्श का कसा होना और पीली पंखुड़ियां अभी बाहर न आई हों। डंठल एवं शीर्श की कुल लंबाई किस्म के आधार पर 15 से 25 सेमी. की हो सकती है। मुख्य शीर्श की तुड़ाई के बाद एक्जीलरी शूट्स (कक्षवर्ती तना और पत्ते) में वृद्धि होती है और कभी–कभार छोटे–छोटे शीर्श भी बन जाते हैं। विपणन के लिए इनकी तुड़ाई भी की जा सकती है।
फूलगोभी	कर्ड और इसके आकार द्वारा पक्वता की अवस्था का पता लगाया जाता है। यदि तुड़ाई में देरी हो जाए तो कर्ड ढीले पड़ने के साथ–साथ बेरंग नजर आते हैं। यदि इसका भंडारण किया जाना है तो बेहतर होगा कि कर्ड के पूरी तरह नजर न आने से पहले और पत्रों के लिपटे नजर आने पर ही इसकी तुड़ाई कर ली जाए।
बंदगोभी	शीर्श का मजबूत एवं कसा होना तथा शीर्श का रंग, प्रयुक्त पक्वता संबंधी विशेशताएं हैं । पूर्ण विकसित होने पर शीर्श का रंग हल्का हो जाता है।
गाजर	किस्म के आधार पर वांछित आकार की प्राप्ति की जाती है। चाहे किस्म के आधार पर पूर्ण आकार की प्राप्ति न हो फिर भी स्वीकार्य आकार की प्राप्ति हो जाने पर बाजार में बिक्री के लिए ये तैयार होती हैं। सीड स्टॉक (बीज का डंठल) के नजर आने से पहले इनकी तुड़ाई करना अत्यावष्यक होता है।
कद्दूवर्गीय अथवा बेल वाली सब्जियाँ	सामान्य रूप से कद्दूवर्गी फल तेजी से परिपक्व होते हैं। चप्पनकद्दू, टिंडा, करेंला, खीरा, तरबूजा जैसी किस्म की सब्जियों में हफ्ते के भीतर फल पक्वता की अवस्था में पहुंच जाते हैं। अन्य किस्म की सब्जियों जैसे – घिया, तुरई, चिचिण्डा आदि में यहाँ तक कि फल के सेट (या लगने) के 20 दिनों के बाद ही या 12 से 15 दिन के समय के भीतर तुड़ाई कर ली जाती है। घिया, तुरई में गूदा रेशेदार नहीं होना चाहिए। करेंले में इसका रंग पीला या पीलेपन (संतरी) में नहीं बदलना चाहिए और हरी अवस्था में ही उसकी तुड़ाई की जानी चाहिए। खरबूजे एवं तरबूज में तुड़ाई की दृष्टि से पक्वता के स्तर पर पहुंचने के लिए इन्हें 30 से 40 दिनों का समय चाहिए।
बैंगन	वांछित आकार की प्राप्ति पर इसकी तुड़ाई की जानी चाहिए। ध्यान रखें कि तुड़ाई इसके सख्त होने से पहले हो या इस पर असामान्य रंग की धारियाँ न हों। त्वचा चमकीली होनी चाहिए और बीज अल्पविकसित होने चाहिए।
टमाटर	इसकी तुड़ाई उस उद्देश्य पर आधारित होती है जिसके लिए इसे उगाया जाता है और यह उतने समय पर भी निर्भर करती है जितना इसे गंतव्य स्थान में जाने पर लगता है। इन्हें दूर–दराज के क्षेत्रों में भेजने के लिए इन्हें हरी अवस्था में ही तोड़ लेना चाहिए और रास्ते के दौरान ये स्वतः पक जाते हैं। पास ही के बाजार में इनकी बिक्री और प्रसंस्करण के लिए इन्हें लाल अवस्था में तोड़ लेना चाहिए। फल के रंग को कलर चार्ट या प्रकाश पारगम्यता तकनीक के प्रयोग से रंग मपाई यंत्र द्वारा मापा जा सकता है।
आलू	त्वचा का बढ़ना (सख्त होना), स्टार्च परिमात्रा एवं पत्ती जीर्णता तुड़ाई सूचकांक होते हैं। बाजार में बिक्री और अच्छे मूल्य के लिए पूर्ण पक्वता से पहले भी आलुओं की तुड़ाई की जाती है। यदि ये पूर्ण पक्वता से पूर्व तोड़े गये हैं तो ट्यूबर (कंद) भंडारण के अनूकूल नहीं होते और इसलिए इनका तुरंत निपटान कर देना चाहिए।
लहसुन और प्याज	फसल उगने के उद्देश्य के आधार पर प्याज की तुड़ाई निर्भर करती है। हरे प्याज के लिए खेत में 45 से 90 दिन का समय लगता है और किस्म के आधार पर बल्ब के लिए 90 से 150 दिन का समय लगता है। जब फसल के डंठल का ऊपरी भाग 50 प्रतिशत भाग ढहने या गिरने लगे तो इससे एक हफ्ते पहले प्याज की तुड़ाई कर लेनी चाहिए। लहसुन जब ऊपर से पीला या भूरा नजर आने के साथ–साथ सूखने एवं मुड़ने लगे तो यह तुड़ाई के लिए तैयार होता है।
भिंडी	इसकी तुड़ाई नर्म होने पर होती है और अपनी अधिकतम वृद्धि दर को दर्शाती है। इस चरण पर इसके मंजरी छोर को जब झुकाया जाता है तो वह आसानी से टूट जाता है। फल सेट के 7 से 8 दिनों में यह तुड़ाई के लिए तैयार हो जाता है। बारबार तुड़ाई से फल की संख्या में वृद्धि होती है और इससे अधिक लाभ होता है।

मटर	मटर की गुणवत्ता शर्करा के गुणवत्ता एवं इसके मुलायम होने की अवस्था पर निर्भर करता है। पक्वता एवं आकार के बढ़ने से शर्करा तेजी से घटती है और स्टार्च एवं प्रोटीन बढ़ जाती है। अतः उच्च शर्करा की मात्रा उच्च गुणवत्ता का सूचक होती है। फली का नजर आना पक्वता का अतिरिक्त सूचक है। चूँकि पक्वता के साथ इसका सख्त पन बढ़ता जाता है, इसलिए इसकी मुलायम स्थिति को मापने के लिए टेंड्रोमीटर का प्रयोग किया जाता है।
मूली	जल्द उगने वाली फसलों के अंतर्गत इसको पकने में तीन से चार हफ्तों का समय लगता है। मूली की तुड़ाई तब की जाती है जब जड़ें गूदेदार और रेशेदार बनने से पहले भी मुलायम हों।

कटाई या तुड़ाई

कटाई का मुख्य उद्देश्य न्यूनतम क्षति एवं न्यूनतम लागत के साथ परिपक्वता की उचित अवस्था में फलों या सब्जियों की तुड़ाई करना है। अधिक फलों एवं सब्जियों में इस उद्देश्य की श्रेष्ठ प्राप्ति हेतु हाथ द्वारा तुड़ाई की जाती है।

• हाथ द्वारा तुड़ाई

हाथ द्वारा तुड़ाई सर्वाधिक फायदेमंद होती है। फसलों की बाद की गुणवत्ता परिरक्षित करने के लिए कटाई एवं रखरखाव में सावधानी बरतने की जरूरत होती है। इन पर खरोंच या इन्हें क्षति पहुंचने से इन पर काले या भूरे धब्बे पड़ जाते हैं जिससे फसल अपना आकर्षण खो बैठती है। यथासंभव कटाई का काम दिन के ठंडे समय में किया जाना चाहिए और कटाई की गई फसल को तुरंत किसी छायादार जगह पर डाल देना चाहिए। बारिश एवं बर्फ गिरने के तुरंत बाद कटाई नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे रोगाणुओं के पनपने या फसल के खराब होने की संभावना बढ़ जाती है। नर्म फल जैसे कि स्ट्राबेरी जो कि छोटे पौधों पर पनपती हैं, उन्हें तुरंत तुड़ाई करके उचित डिब्बे में डाल कर रखना चाहिए। आम, सिट्रस, चीकू, अमरूद, सेब आदि जैसे लंबे या मध्यम लंबे वृक्षों पर उगने वाले फलों की तुड़ाई करना मुष्किल होता है और इनके प्रसंस्करण में काफी समय लगता है। इसकी कटाई के लिए एक लंबे डंडे के समान एक डंडा होता है जिसमें कटाई कील युक्ति होती है और जिसके अंत में एक थैला लगा होता है। मरोड़ने या खींचने की बजाय फल डंडी की कटाई से फलों की तुड़ाई करने से बाद में इनके भंडारण के दौरान गलने एवं सड़ने की संभावना कम हो जाती है। आलू, प्याज, लहसुन, कोलोकेसिया और टैपियोका को कांटे या फावड़े की सहायता से बाहर निकाला जाता है। इसी तरह अन्य मूल फसलों जैसे मूली, शलगम, गाजर एवं चुकन्दर को मृदा से उखाड़ कर निकाला जाता है। क्षतिग्रस्त मूलों को यथाशीघ्र अलग करने की जरूरत पड़ती है। भिंडी, बैंगन जैसे फल एवं सब्जियों को चाकू, कैंची, दराँती जैसी कटाई यत्रों की जरूरत पड़ती है।

• मशीनी कटाई

ऐसे बहुत कम फल होते हैं जिनकी ताजी बिक्री के लिए मशीनों से इनकी तुड़ाई की जाए क्योंकि इससे इनकी गुणवत्ता के क्षय की संभावना बढ़ जाती है। प्रसंस्करण के लिए फलों की मशीनी तुड़ाई की जा सकती है। रस निकालने की दृष्टि से संतरों को शक्तिशाली विंड मशीन से पेड़ से तोड़ा जा सकता है। शराब बनाने के लिए अंगूरों की तुड़ाई ट्रेक्टर–माउंटिड मशीनों के प्रयोग से की जा सकती है जिस पर रबड़ की कंघीदार अंगुलियाँ बनी होती हैं जो तने पर तेजी से चलती हैं और जो अंगूर के गुच्छों को पत्तों समेत तोड़ लेती हैं। केलों की तुड़ाई गुच्छों के रूप में हाथों से की जाती है।

छंटाई

स्वस्थ फलों एवं सब्जियों को भी खराब होने का भय रहता है। गले–सड़े उत्पादों के साथ स्वस्थ फलों या सब्जियों के साथ ढुलाई से स्वस्थ उत्पादों की क्षति ही होती है। अतः तुडाई के बाद सबसे पहले सही ढंग से उत्पाद की छंटाई करें।

वर्गीकरण

छंटाई के बाद उनका सही वर्गीकरण करें, क्योंकि बाजार में उत्पाद के उपयुक्त दाम प्राप्त करने के लिए वर्गीकरण एक आवश्यक क्रिया है। सामान्यतः वर्गीकरण

उत्पादों के आकार, वजन, रंग, परिपक्वता, बनावट, ठोसपन, कीट एवं बीमारियों से ग्रसित तथा यांत्रिक चोट की क्षति के आधार पर किया जाता है। वर्गीकरण को अतिरिक्त श्रेणी, प्रथम श्रेणी एवं द्वितीय श्रेणी या ए, बी तथा सी ग्रेड आदि में श्रेणीकृत किया जा सकता है।

पूर्व शीतलीकरण (प्री–कूलिंग)

साधारणतः पेड़ पर लगे हुए फलों या खेत में उगी सब्जियों का तापक्रम वातावरण से कुछ अधिक होता है, और ग्रीष्मकाल में तो तापक्रम और भी अधिक होता है। तुड़ाई के उपरांत उच्च तापमान, अधिकतर औद्यानिक फसलों की गुणवत्ता एवं भण्डारण के लिए हानिकारक होता है। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि उत्पादों का तुड़ाई उपरांत एवं पैकिंग पूर्व–शीतकालीकरण अवश्य करें। पूर्व शीतलीकरण की क्रिया से उत्पाद के प्रक्षेत्र तापमान को कम किया जा सकता है जिससे उत्पाद की श्वसन दर एवं पानी का ह्रास (वाष्पीकरण) घट जाता है। पूर्व–शीतकालीकरण का उचित लाभ लेने के लिए उत्पादों को परिवहन एवं भण्डारण के लिए प्रशीतकृत वाहन (रेफरीजिरेटेड वेन) का उपयोग करना अच्छा रहता है। पूर्व–शीतकालीकरण की क्रिया ठण्डी हवा, बर्फीले पानी, बर्फ या निर्वात इत्यादि शीतलकों द्वारा की जाती है।

आरोग्य करना (क्योरिंग)

उत्पादों के यांत्रिक नुकसान को कम करने, नमी की मात्रा को घटाने और सड़न एवं फलों के ऊपर फफूंद की वृद्धि को कम करने के लिए 'क्योरिंग' तुड़ाई के बाद दी जाने वाला अत्यन्त लाभदायक उपचार है। सामान्यतः आरोग्यकरण से अधिकतर फलों एवं सब्जियों की नमी की मात्रा घट जाती है। जिससे उनका भण्डारणकाल बढ़ जाता है। सब्जियों व फलों को सूक्ष्म जीवाणुओं से मुक्त करने हेतु गर्म पानी में थोड़ी देर के लिए डुबोकर रखा जाता है। गर्म पानी के उपचार को प्रभावी बनाने के लिए हर बार पानी में कवकनाशी भी डालते हैं।

रंगोपचार एवं डिग्रीनिंग

फलों का बाजार में अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिए कुछ फलों को उनके विशेष गुणों के आधार पर रंग प्रदान करने के लिए इथिलीन से उपचारित किया जाता है। नींबू वर्गीय फलों, केला, आम और कभी–कभी टमाटर में भी उनके प्राकृतिक गुणों के अनुरूप रंगोपचार किया जाता है जिसे उपभोक्ता अधिक पसंद करते हैं। यह उपचार फलों के प्रकार एवं तुड़ाई की दशा पर निर्भर करता है। यह क्रिया एक विशेष प्रकार के कमरे में की जाती है जिसका तापमान 26.7 डिग्री सेन्टीग्रेड और सापेक्ष आर्द्रता 85–92 प्रतिशत होती है। फलों को बन्द कमरे में इथिलीन की कम आर्द्रता से उपचारित करते हैं।

धुलाई

उपभोक्ताओं तक उत्पाद को साफ एवं उचित रूप में पहुंचाने के लिए तुड़ाई के बाद धुलाई करना जरूरी होता है। परन्तु इस प्रक्रिया को स्ट्राबेरी जैसे नाजुक फलों में नहीं अपनाया जाना चाहिए। धुलाई करने से जड़ एवं गांठ वाली फसलों जैसे गाजर, मूली एवं आलू की धूल, मिट्टी साफ हो जाती है जिससे वे दिखने में सुन्दर व आकर्षक लगते हैं और उनका बाजार में अच्छा भाव मिलता प्याज, तरबूज, खरबूजा, खीरा एवं शकरकन्दी को शुष्क धुलाई द्व ारा साफ किया जाता हैं केले की धुलाई करने से उसकी भण्डारण अवधि बढ़ जाती है। अतः औद्यानिक उत्पादों की तुड़ाई उपरांत सही ढंग से धुलाई की जाए।

पैकेजिंग

पैकेजिंग का मुख्य उद्देश्य फल, सब्जियों एवं मूल फसलों को बिक्री तथा उपभोग तक सही दशा में बनाए रखना है। अच्छी पैकेजिंग के जरिये खाद्य उपलब्धता की दृष्टि से ग्राहकों को अधिक विकल्प मिलते हैं और उत्पाद की खरीद के लिए इससे ग्राहकों को बढ़ावा भी मिलता है। पैकेजिंग से ग्रामीण उत्पादकों को अधिशेष उत्पाद से अतिरिक्त आमदनी मिलती है। उत्पादक एवं कृषक से उपभोक्ता तक की लंबी एवं जटिल यात्रा में ताजे फल, सब्जियों एवं जड़दार फसलों की पैकेजिंग सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरणों में से एक है। पैकेजिंग खाद्य पदार्थों के स्थानीय अधिशेष के जीवन (निधानी आयु) को बढ़ाती है और इससे संभव होता है कि ऐसे अतिरिक्त खाद्य पदार्थों का अन्य क्षेत्रों तक वितरण हो।

उत्पादों के प्रकार, आकार एवं दशा के आधार पर पैकिंग सामग्री अलग–अलग उपयोग की जाती है। हालांकि पैकिंग से उत्पाद की गुणवत्ता नहीं बढ़ाई जा सकती है लेकिन यह उत्पाद को बचाए रखने एवं विपणन के दौरान होने वाली क्षति को कम करने में अति सहायक होते हैं। तुड़ाई के समय फल एवं सब्जियों को रखने के लिए कई प्रकार की सामग्री प्रयोग की जाती है। जैसे कहीं–कहीं पर लकड़ी या बांस की टोकरियां पैकिंग के काम में लाई जाती है। नींबू वर्गीय फलों और कुछ सब्जियों को कभी–कभी स्थानीय बाजार में बेचने के लिए उन्हें तोड़कर सीधे ट्रक में लाद दिया जाता है। पपीता एवं कुछ शीतोष्ण फलों की तुड़ाई टोकरियों में करके बाद में उन्हें गद्देदार डिब्बों में पैक किया जाता है। स्ट्राबेरी की तुड़ाई करके सीधे प्लास्टिक के छोटे–छोटे परन्तु आकर्षक डिब्बों में पैक किया जाता है। भारत में गोभी, बैंगन व टमाटर आदि सब्जियों को भी अक्सर सीधे ट्रकों में ही लाद दिया जाता है।

फलों को परिवहन के दौरान रगड़, झटकों एवं दूसरे डिब्बों के वजन से बचाने के लिए उचित पैकिंग अति आवश्यक है। फलों के डिब्बों को अच्छी तरह बांधकर वाहन में एक दूसरे के ऊपर सीधे रखना चाहिए ताकि परिवहन के दौरान फलों को कम से कम क्षति हों। डिब्बों के उपर साफ–साफ बड़े अक्षरों में उत्पाद का नाम, किस्म, वजन या संख्या, श्रेणी और श्रोत लिखा होना चाहिए। विभिन्न सब्जियों जैसे प्याज, लहसुन, मटर, आलू, शकरकन्द, पत्तागोभी, फूलगोभी एवं अधिकांश केन्द्रीय फसलों के स्थानीय एवं दूरस्थ बाजार में विपणन के लिए बोरों का उपयोग किया जाता है। मौसमी, हरे आम, नीबू, संतरे तथा चकोतरे आदि फलों के लिए भी बोरों का उपयोग ही किया जाता है। अधिकांश शीतोष्ण फल, अंगूर, आम आदि को भण्डारण, परिवहन एवं विपणन के लिए लकड़ी या गत्ते के डिब्बों में पैक किया जाता है। गत्ते के डिब्बों (सी.एफ.बी) में पैकिंग करने से परिवहन, भण्डारण एवं विपणन के समय भी सुविधा रहती है एवं फलों में नुकसान भी कम होता है। परिवहन के समय क्षति से अतिरिक्त बचाव के लिए डिब्बों में गद्देदार पदार्थ जैसे पुआल, कागज की कतरने या प्लास्टिक की चादर (सीट) आदि रखने से रगड़ द्वारा क्षति को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

उत्पाद को दूरस्थ बाजार में भेजने के लिए पैकिंग सामग्री का मजबूत एवं सुरक्षित होना आवश्यक है। कुछ उत्पादों की श्वसन दर अधिक होती है। ऐसे उत्पादों के लिए डिब्बों में वायु संचार नियमित बनाने के लिए छेदों का आकार बड़ा होना चाहिए। अतः सभी बातों को ध्यान में रखकर उत्पादों की पैकिंग सही ढंग से करनी चाहिए ताकि तुड़ाई उपरांत क्षति को रोका या कम किया जा सके और उत्पाद का बाजार में मूल्य भी अधिकाधिक मिल सके।

ढुलाई (परिवहन)

फलों एवं सब्जियों के विपणन में ढुलाई को विशेष योगदान होता है। आज भी अधिकतर फलों व सब्जियों को बिना पैक किए ही ट्रकों, रेल में ठूंस दिया जाता है। बागवानी फसलों को विपणन हेतु या दूर–दराज के क्षेत्रों में भेजने हेतु उचित परिवहन व्यवस्था का प्रबंध करना चाहिए।

हमारे देश में ढुलाई हेतु शीत युक्त गाड़ियों की व्यवस्था शुरू हो चुकी है, परन्तु इसे व्यावसायिक स्तर पर अपनाने की आवश्यकता है।

मूल्य संवर्धन

फलों और सब्जियों के उत्पादन में भारत पहले स्थान पर है परन्तु भारी मात्रा में फल व सब्जियां टूट कर गिर पड़ते हैं अथवा उनकी गुणवत्ता खराब होती है। टूट कर गिरने वाले इन फलों का जैम, जैली, मुरब्बा, कान्फेक्शनर, कैण्डी अथवा शर्करा से बने दूसरे उत्पाद बनाने में प्रभावी उपयोग किया जा सकता है। शर्करा से बने ऐसे उत्पादों का निर्माण घर में परिरक्षण का साथ–साथ औद्योगिक स्तर पर फलों का प्रसंस्करण एक महत्वपूर्ण पहलू है। शर्करा के अत्यधिक सांद्रण से परिरक्षण की इस विधि से नमी में अत्यधिक कमी हो जाती है और इससे उत्पादों में सूक्ष्मजीवियों के कारण होने वाली विकृति रुक जाती है।

जैम

जैम एक ऐसा उत्पाद है जो गाढ़ा, फलों के ऊतकों को बांधे रखने में मजबूत होता है और इसे बनाने के लिए पर्याप्त शर्करा को फल की लुगदी में मिलाकर उबाला जाता है। जैम एक प्रकार के अथवा दो या उससे अधिक प्रकार के फलों

से बनया जा सकता है। सेब, पपीता, गाजर, स्ट्राबेरी, आम, अंगूर, अनन्नास इत्यादि के जैम बनाए जाते हैं। जैम बनाने में भिन्न–भिन्न फलों के विभिन्न संयोजनों का उपयोग किया जाता है। इनमें से अनन्नास अपनी तीखी सुवास और अम्लता के कारण मिश्रण के लिए सर्वश्रेष्ठ है। फल की लुगदी बनानाः स्वस्थ फलों को छांट कर बहते पानी में धोया जाता है। अलग–अलग फलों के अनुसार उनकी लुगदी बनाने की विधि अलग–अलग होती है। उदाहरण के लिए आम को छील कर तथा वाष्पित कर लुगदी बनाई जाती है। सेबों को छील कर उनका गुदा निकाल कर, छोटे–छोटे टुकड़े कर पानी में उबाल कर लुगदी बनाई जाती है। आलु बुखारे का छिलका उतार कर लुगदी बनाई जाती है, आड़ू को छीलकर लुगदी बनाई जाती है, खुबानी के हिस्से करके लुगदी बनाई जाती है, बेरीज़ को ज्यों का त्यों पानी में उबाल कर लुगदी बनाई जाती है अथवा पकाया जाता है।

जैम और जैली बनाने में मीठापन लाने के लिए अधिक से अधिक 25 प्रतिशत कॉर्न सिरप मिलाया जा सकता है। आमतौर पर जैम बनाने के लिए बेहतर किस्म के गन्ने का उपयोग किया जाता है। डाली जाने वाली शर्करा की मात्रा का अनुपात विभिन्न प्रकार और किस्म के फलों, इसके पकने की अवस्था व अम्लता के हिसाब से अलग–अलग होता है। फल की लुगदी और शर्करा का अनुपात सामान्यतः 1:1 ही लिया जाता है। यह अनुपात सामान्यतः बेरी, किशमिश, आलुबुखारा, आड़ू, अनन्नास और अन्य खट्टे फलों के लिए उपयुक्त है।

भिन्न–भिन्न फलों में सिट्रिक, मेलिक अथवा टार्टरिक अम्ल तो प्राकृतिक रूप में पाए जाते हैं। जैम बनाते समय इन अम्लों को उन फलों में पूरक रूप से मिलाया जाता है जिनमें प्राकृतिक रूप से इनकी कमी होती है। जैम में इन अम्लों को मिलाना जरुरी होता है क्योंकि शर्करा पैक्टिन–अम्ल की पर्याप्त मात्रा जैम को भली–भांति जमाने के लिए जरूरी होती है। फल रस और पैक्टिन के मिश्रण के लिए pH 3.1 स्वीकृत है। तैयार जैम की अम्लता, 0.5 से 0.7 प्रतिशत तक घटती–बढ़ती है जो जैम के प्रकार पर निर्भर करती है। अम्ल को जैम के पक जाने के बाद अन्त में मिलाया जाना चाहिए, ताकि शर्करा का प्रतीपन अधिक हो। जब अम्ल आरंभ में मिलाया जाता है तो जैम का जमाव कम होता है।

फल की लुगदी, अपेक्षित मात्रा में चीनी में पैक्टिन के साथ पका कर तैयार की जाती है। इस तैयार माल में 69 प्रतिशत कुल विलेय ठोस (टीएसएस) होते हैं। स्वीकृत खाद्य रंग, अपेक्षित मात्रा में सिट्रिक अम्ल और सुवास इसी अवस्था में मिलाए जाते हैं। क्वथन प्रक्रिया से अधिक मात्रा में निहित पानी तो समाप्त होता ही है, साथ ही यह प्रक्रिया शर्करा को भी प्रभावित करती है, सुवास पैदा करती है तथा बनावट को सुदृढ़ बनाती है। जैम उबालने के दौरान उत्पाद में से सभी सूक्ष्मजीव नष्ट हो जाते हैं। गर्म जैम को जब साफ बर्तनों में भर कर सील करके जब उल्टा किया जाता है तो जैम ढक्कन की सतह पर जम जाता है, जिससे भण्डारण के समय सूक्ष्मजीवों से होने वाली विकृति रुकती है। जैम तैयार करने के लिए अन्त बिन्दु को निम्न विधि से नियत किया जा सकता है।

- **बूंद जांचः** जैम के पूरी तरह पकने की जांच करने का यह एक सबसे आसान तरीका है जो आमतौर पर गृहणियों द्वारा अपनाया जाता है। विषेषकर उस समय जब इसे जांचने की कोई अन्य सुविधा न हो। इस विधि में एक चम्मच में जरा सा जैम कड़ाही में से निकाल कर व हवा में ठंडा कर पानी से भरे ग्लास में जैम की एक बूंद डाली जाती है। बूंद यदि विघटित हुए बिना पानी में बैठ जाए तो समझो जैम तैयार हो चुका है।
- **पत्तर जांचः** इस जांच में थोड़ा–सा जैम एक बड़ी सी चम्मच अथवा लकड़ी की कड़छी में लेकर इसे ऊपर से गिराते हैं। यदि जैम चाषनी के रूप में गिरे तो इसे और सांद्रित करने की जरूरत होती है और यदि यह पपड़ी की तरह गिरे या पत्तर बन जाए तो समझो जैम तैयार हो गया है।

जैली

जैलियां, जैलीकृत उत्पाद होते हैं जो फल रस में चीनी डालकर, उसे उबाल कर और पैक्टिन व खाद्य अम्ल मिलाकर और बिना गूदा या लुगदी मिलाए बनाए जाते हैं। जैलियां आमतौर पर केवल एक ही प्रजाति के फलों के रस से उबाल कर बनाई जाती हैं। जैली सामान्यतः अमरूद,

खट्टे सेब, आड़ू, पपीता, केले की कुछ किस्में और गूज़बैरी से तैयार की जाती है। दूसरे फलों का भी उपयोग किया जा सकता है पर उनमें पैक्टिन का चूर्ण मिलाने के बाद क्योंकि अन्य फलों में पैक्टिन की मात्रा कम होती

रस निकालने के लिए अधिकांश फलों को उबाला जाता है, ताकि अधिकाधिक रस और पैक्टिन मिल सके। उबालने पर प्रोटोपैक्टिन, पैक्टिन में परिवर्तित हो जाती है और फल के ऊतक नरम हो जाते हैं। अधिक रसदार फलों में पानी मिलाने की जरुरत नहीं होती है। फलों को काट कर पानी में उबाला जाता है। फल में पानी की मात्रा इतनी होनी चाहिए कि अधिकाधिक पैक्टिन मिल सके। अब इसमें प्रति कि.ग्रा. 650 से 750 कि.ग्रा. चीनी डाली जानी चाहिए। रस को उस समय तक उबालना चाहिए जब तक कि आधा पानी भाप बन कर उड़ न जाए। इसके बाद धीरे–धीरे हिसाब से चीनी डालनी चाहिए। किसी भी प्रकार का अम्ल हमेशा उबालने की प्रक्रिया के अन्त में डाला जाना चाहिए। जैलियों को छोटे–छोटे भागों (25–75 कि. ग्रा.) में उबालना चाहिए, ताकि ज्यादा लम्बे क्वथन समय से बचा जा सके क्योंकि ज्यादा उबालने पर पैक्टिन का विघटन होने लगता है। जैली तैयार हो जाने के बाद इस पर से झाग हटाया जाता है। इसे सूखे और गर्म कांच के जार में डालने से पहले हल्का सा ठंडा किया जाता है। जैली को बर्तन (कांच के जार इत्यादि) में भरा जाता है। भरते समय इसका तापमान 85^0 से. से कम नहीं होना चाहिए और इस तापमान को 24 घंटे तक बनाए रखना चाहिए। इसके बाद इसे ठंडा होने दिया जाता है और उत्पाद का जैलीकरण होता है।

मार्मलेड

यह एक प्रकार की फल जैली है जिसमें फल के कटे टुकड़े अथवा इसका छिलका ज्यों का त्यों बने रहते हैं। बेहतर किस्म के जैली मार्मलेड मीठे संतरे/मैण्डेरिन संतरे और खट्टे संतरों को 2:1 के अनुपात में मिला कर बनाए जाते हैं। मीठे संतरे (माल्टा) के टुकड़ों को मार्मलेड बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। नींबू वर्गीय फलों की पीली बाहरी परत को सावधानी से छीला जाता है। छिलके उतरे फल को 2–2.5 सें.मी. लम्बे और 1–1.2 मि.मी. मोटे टुकड़ों में काटा जाता है। पानी में 0.25 प्रतिशत सोडियम बायकार्बोनेट अथवा 0.1 प्रतिशत अमोनिया घोल मिलाकर उबालने से टुकड़े नरम हो जाते हैं। जैली में डालने से पहले टुकड़ों को गाढ़ी चाशनी में कुछ देर के लिए डाला जाता है, ताकि उनका घनत्व बढ़ जाए और वे जैली में डालने पर सतह पर न तैरें। फल के अर्क को चीनी मिलाने से पहले उबालते हैं। उबालने के दौरान झाग के रूप में ऊपर आ जाने वाली अशुद्धियों को समय–समय पर हटाया जाता है। इसे तब तक उबाला जाता है जब तक कि यह बन कर तैयार न हो जाए। इसके अन्तिम बिन्दु की जांच ठीक उसी प्रकार की जाती है जैसी कि जैली की जाती है। मार्मलेड का भूरा हो जाना एक सामान्य सी बात है और ऐसा होने से रोकने के लिए प्रति कि.ग्रा. मार्मलेड में 0.09 ग्राम पोटेशियम मैटाबाइसल्फाइट (KMS) डालना चाहिए और मार्मलेड को टिन के बर्तन में नहीं रखना चाहिए। मार्मलेड जब ठंडा हो रहा हो तो थोड़े से पानी में KMS घोल कर मार्मलेड में मिला देना चाहिए। KMS के द्वारा फफूंद से होने वाली खराबी को भी रोका जा सकता है।

फ्रूट टॉफियां

फल की टॉफियां, फल की लुगदी में दूसरी वस्तुएं जैसे ग्लूकोज़, दूध का पाउडर और खाद्य वसा मिला कर तैयार की जाती हैं। सबसे पहले फल की लुगदी को तब तक गाढ़ा किया जाता है जब तक कि वह आधी न रह जाए। सामान्यतः 1 कि.ग्रा. गाढ़ी लुगदी, 160 ग्राम ग्लूकोज, 320 ग्राम दूध का पाउडर और 200 ग्रा. खाद्य वसा मिलाए जाते हैं। इस मिश्रण को गर्म करके गाढ़ा किया जाता है। इसके बाद इसे सपाट ट्रे में 1 सें.मी. मोटी परत में फैला दिया जाता है, ताकि यह ठंडा हो सके। इसके बाद इन्हें वांछित आकार के टुकड़ों में काट कर नमीरोधी कागज पर लपेट दिया जाता है। इन टॉफियों को ठण्डे और शुष्क स्थान पर रखा जाता है।

संरक्षित खेती

वी. के. सिंह एवं सी. एम. परिहार
सस्य विज्ञान संभाग,
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली–110012

गत कई दशकों से फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए खेती में संसाधनों का अत्यधिक और असंतुलित प्रयोग किया गया। परिणामस्वरूप आज स्थिति यह है कि हमारे संसाधनों की गुणवत्ता और मात्रा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। जो कि हमारे पारिस्थितिकी तंत्र एवं खाद्य सुरक्षा के लिए एक खतरा है। परंपरागत खेती के कारण भूमि के उपजाऊपन एवं फसल उत्पादों की गुणवत्ता में कमी, मृदा में पोषक तत्वों की कमी, भूजल स्तर में निरंतर गिरावट और खेतों में खरपतवारों का बढ़ता प्रकोप जैसी समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं। इसके अलावा खेती में बढ़ती उत्पादन लागत और घटती आय चिंता का विषय बनी हुई है। अतः हमें प्राकृतिक संसाधनों के उचित प्रबंधन के प्रति सजग होने की आवश्यकता है। इस स्थिति में संरक्षित खेती का नाम उभर कर सामने आता है।

संरक्षित खेती से तात्पर्य संसाधन संरक्षण की ऐसी तकनीक से है जिसमें अच्छी फसल की पैदावार का स्तर बने रहने के साथ–साथ संसाधनों की गुणवत्ता भी बनी रहे ताकि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ–साथ भावी पीढ़ियों के लिए भी एक बेहतर वातावरण सुनिष्चित किया जा सके। संरक्षित खेती मुख्यतः तीन सिद्धांतों– क) न्यूनतम जुताई, ख) फसल अवशेषों का मृदा सतह पर स्थायी आवरण, एवं ग) फसल चक्र विविधीकरण पर आधारित है।

क) न्यूनतम जुताई

पिछली फसल की कटाई के तुरन्त बाद मशीन द्वारा मक्का की बुवाई करने को जीरो टिलेज कहते हैं। इस विधि से बुवाई करने पर खेत की जुताई करने की आवश्यकता नही पड़ती है तथा खाद एवम् बीज को एक साथ डाला जा सकता है। जीरो टिलेज तकनीक से चिकनी मिट्टी के अलावा अन्य सभी प्रकार की मृदाओं में खेती की जा सकती है।

जीरो टिलेज मशीन साधारण ड्रिल की तरह ही होती हैं, परन्तु इसमें टाइन चाकू की तरह होता है। यह टाइन मिट्टी में नाली के आकार की दरार बनाता है, जिसमें खाद एवम् बीज उचित मात्रा में सही गहराई पर पहुँच जाता है।

ख) फसल अवशेष का मृदा की सतह पर स्थायी आवरण

संरक्षित खेती का दूसरा मुख्य सिद्धांत है मृदा सतह पर स्थायी रूप से फसल अवशेषों का आवरण बनाये रखना। फसल अवशेषों का आवरण मृदा को वायु व जल द्वारा होने वाले क्षरण से बचाता है व साथ ही साथ फसल अवषेष कार्बनिक पदार्थ के मुख्य स्रोत भी होते हैं जो मृदा के स्वास्थ्य को उत्तम बनाये रखने के लिये आवश्यक है। इसके अलावा यह अवषेष मृदा की सतह पर होने के कारण मृदा के भीतर एवं फसल के अंदर के तापक्रम को सामान्य बनाये रखते हैं और इस तरह खेती की यह पद्धति वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं।

ग) फसल चक्र विविधीकरण

फसल चक्र में अपनाई गई हर फसल की जुताई, पानी एवं पोषक तत्वों की जरूरत, कीटों–बीमारियों का प्रकोप एवं रसायनों का प्रयोग अलग–अलग होता है। इसलिए फसल चक्र में विविधीकरण विभिन्न जैविक बाधाओं से निपटने में मदद करता है तथा मृदा की उर्वरा शक्ति में भी सुधार लाता है। हर एक फसल चक्र में एक दलहनी फसल का समावेश (दाने वाली या हरी खाद हेतु) करना चाहिये।

भारत में संरक्षित खेती

भारत में संरक्षित खेती तकनीकी गंगा के मैदानी क्षेत्र में धान–गेहूं फसल प्रणाली के अंतर्गत 2.3 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में अपनाई जा रही है जिसका प्रमुख कारण यह है कि

परंपरागत विधि से धान की फसल के बाद गेहूं की खेती करने से बुआई में अधिक विलंब होता है इसलिए वहां शून्य जुताई से गेहूं की खेती काफी प्रचलित है। हमारे देश में अभी भी पूर्ण संरक्षित खेती अर्थात् जो संरक्षित खेती के तीनों सिद्धांतों पर आधारित हो, का क्षेत्रफल कम है। नवीन कृषि यंत्रों जैसे कि हैप्पी सीडर और डबल डिस्क प्लांटर के आने व परंपरागत खेती की समस्याओं ने कृषकों का ध्यान संरक्षित खेती की ओर खींचा है जिससे यह अनुमान है कि आने वाले समय में संरक्षित खेती का दायरा गंगा के मैदानी क्षेत्रों में धान–गेहूं फसल पद्धति तक सीमित न रहकर अन्य क्षेत्रों में भी बढ़ेगा।

संरक्षित खेती के लाभ

किसी भी प्रक्षेत्र में फसल अथवा फसल प्रणालियों का प्रबंधन वहां पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों एवं प्रबंधन तकनीकियों के अनुसार करना आज के समय की जरूरत बन गयी है। संरक्षित खेती के अंतर्गत अधिक क्षेत्रफल लाने के लिए इससे मिलने वाले लाभों के प्रति जागरूकता बढ़ानी होगी। इससे मिलने वाले लाभ निम्न प्रकार हैं:–

1. संरक्षित खेती को अपनाकर पारम्परिक खेती की तुलना में 25–30 प्रतिशत तक समय, ईंधन व मजदूरी की बचत व लगभग 4000–5000 रुपये प्रति हेक्टेयर तक लागत में कमी कि जा सकती है।
2. सिंचाई जल की बचत।
3. मृदा की उर्वरा शक्ति में सुधार।
4. मृदा क्षरण, बीमारियों, कीटों व खरपतवारों की रोकथाम हेतु उपयोगी।
5. संरक्षित खेती को अपनाकर पर्यावरण को संरक्षित किया जा सकता है।

चित्र 1 : भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली के प्रक्षेत्र पर संरक्षित खेती तकनीक द्वारा गेहूं चने विभिन्न फसलों का सफल उत्पादन किया जा रहा है।

लेखकों से...

1. अपने तकनीकी एवं लोकप्रिय लेख हिन्दी में टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक 30 अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क 80/- मनीऑर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगवाने का पता

प्रभारी अधिकारी

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

फोन: 011-25841670, 25846233, 25841039, 25803600

पूसा एग्रीकॉम: 1800 11 8989 (नि:शुल्क)

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में ...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

प्रो. एम एस स्वामीनाथन पुस्तकालय

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012 द्वारा प्रकाशित तथा

मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028, द्वारा मुद्रित

फोन: 7838075335, 9899355565, 9899355405,